का आदान-प्रदान

[illegible]-संग्रह

नाथ पाण्डेय, एम. ए.
ाध्यापक, संस्कृत-विभाग
काशी विद्यापीठ
वाराणसी

प्रकाशन, वाराणसी-२

★

जुलाई, १९६७

प्रथम संस्करण : ११०० प्रतियाँ

★

मूल्य : ५.००

प्रकाशक | मुद्रक
शब्दलोक प्रकाशन | पारिजात प्रेस
४७ नगर
वाराणसी–२ १

कुतुकविलसितैर्ह्लादयन्ती कवीन्द्रान्
नवनवललनालोलदीप्त्या स्फुरन्ती ।
विकिरति विपुलां कल्पनासिन्धुधारां
जयति रससरेणाञ्चिता मादिका सा ॥

—अमरनाथ पाण्डेय

FOREWORD

[Mahamahopadhyaya Dr. Gopi Nath Kaviraj,
M. A., D. Litt., Padma Vibhushana]

I have read with great interest Pt. Amar Nath Pandey's work entitled "बाणभट्ट का आदान-प्रदान". The writer has made an extensive survey of Sanskrit Literature (Prose and poetry) from the earliest times and has tried to find out the sources to which Bāṇa Bhaṭṭa seems to have been indebted for some of his poetic imagery and expressions. These sources include Vālmīki's Rāmāyaṇa and Kālidāsa's works including Raghu Vaṃśa, Kumar Sambhava, Abhijñāna-Śākuntalam etc. The author has tried to show that in the Post-Bāṇa Sanskrit Literature some of the best Sanskrit writers have been indebted to Bāṇa. These writers include classical Sanskrit authors like Bhūshaṇa Bhaṭṭa, Subandhu, Daṇḍī, Trivikrama Bhaṭṭa, Somadeva etc.

He has also tried to show that even modern Sanskrit writers like Ambikādatta Vyāsa etc. are indebted to Bāṇa.

The work gives a clear evidence of the writer's wide knowledge of Sanskrit Literature (ancient and modern) and of his critical discernment. I hope the work will be widely appreciated by serious students of Sanskrit classics.

23-5-'67 Gopi Nath Kaviraj

अनुक्रम

भूमिका

बाण के ग्रन्थों तथा अन्य कवियों के उल्लेखों और प्रशस्तियों के आधार पर बाण के काल का निर्धारण अति सरलता से हो जाता है। वे सम्राट् हर्षवर्धन के समय में थे। हर्षवर्धन का समय (६०६–६४६ या ६४७ ई०)[1] निश्चित है, अतएव बाण का समय भी प्रायः स्पष्ट निश्चित हो जाता है।

ह्वेनसांग, जो ६२९ ई० से ६४५ ई० तक भारत में रहा, हर्षवर्धन और उनकी शासन-व्यवस्था का उल्लेख करता है।[2] बाण ने हर्षचरित में हर्ष के जीवन के कुछ अंश पर साहित्यिक शैली में प्रकाश डाला है। ह्वेनसांग के हर्ष-विषयक वर्णन तथा हर्षचरित के वर्णन की तुलना करने से यह निश्चित हो जाता है कि दोनों के हर्ष एक हैं।[3] राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद मन्त्रियों ने हर्षवर्धन को जो प्रेरणा दी है, उसका ह्वेनसांग ने संक्षिप्त, किन्तु कमनीय वर्णन किया है।[4] इसी प्रकार हर्षचरित में राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद सिंहनाद ने हर्ष को प्रेरणा प्रदान की है।[5]

---

१. R. C Majumdar and others: An Advanced History of India, pp. 156 & 160.

२. P. V. Kane: The Harshacarita of Bāṇa Bhaṭṭa, Introduction, p. 6.

३. ibid., p. 6.

४. "The opinion of the people, as shown in their songs, proves their real submission to your eminent qualities. Reign then with glory over the land; conquer the enemies of your family; wash out the insult laid on your Kingdom and the deeds of your illustrious father. Great will your merit be in such a case. We pray you reject not our prayer."

—Samuel Beal, Buddhist Records of the Western World, p 211

५. हर्ष० पृ० २८१ २८२

संकेत-सूची

अभि०	अभिज्ञानशकुन्तलम्
अवन्ति०	अवन्तिसुन्दरीकथा
उदय०	उदयसुन्दरीकथा
ऋतु०	ऋतुसंहार
का०	कादम्बरी
का० उ०	कादम्बरी उत्तरार्ध
कीथ	ए० बी० कीथ
कुमार०	कुमारसंभव
के० ग्रं०	केशवग्रंथावली
गद्य०	गद्यचिन्तामणि
तिलक०	तिलकमञ्जरी
नल०	नलचम्पू
नैषध०	नैषधमहाकाव्य
पाण्डेय	चन्द्रशेखर पाण्डेय
बा० आ०	बाणभट्ट की 'आत्मकथा'
यशस्तिलक०	यशस्तिलकचम्पू
रघु०	रघुवंश
राज०	राजतरंगिणी
राम०	रामचंद्रचंद्रिका
वा०	वासवदत्ता
वा० रा०	वाल्मीकीयरामायण
वेम०	वेमभूपालचरित
शिव०	शिवराजविजय
हर्ष०	हर्षचरित
व्यास	शान्तिकुमार नानूराम व्यास

संकेत-सूची

भि०	अभिज्ञानशकुन्तलम्
वन्ति०	अवन्तिसुन्दरीकथा
दय०	उदयसुन्दरीकथा
ऋतु०	ऋतुसंहार
ा०	कादम्बरी
ा० उ०	कादम्बरी उत्तरार्ध
ीथ	ए० बी० कीथ
कुमार०	कुमारसंभव
० ग्रं०	केशवग्रंथावली
द्य०	गद्यचिन्तामणि
तिलक०	तिलकमञ्जरी
ल०	नलचम्पू
ैषध०	नैषधमहाकाव्य
ाण्डेय	चन्द्रशेखर पाण्डेय
ा० आ०	बाणभट्ट की 'आत्मकथा'
शस्तिलक०	यशस्तिलकचम्पू
घु०	रघुवंश
ाज०	राजतरंगिणी
ाम०	रामचंद्रचंद्रिका
ा०	वासवदत्ता
ा० रा०	वाल्मीकीयरामायण
म०	वेमभूपालचरित
शिव०	शिवराजविजय
र्ष०	हर्षचरित
यास	शान्तिकुमार नानूराम व्यास

अनुक्रम

भूमिका

बाण के ग्रन्थों तथा अन्य कवियों के उल्लेखों और प्रशस्तियों के आधार पर बाण के काल का निर्धारण अति सरलता से हो जाता है। वे सम्राट् हर्षवर्धन के समय में थे। हर्षवर्धन का समय (६०६–६४६ या ६४७ ई०)[१] निश्चित है, अतएव बाण का समय भी लगभग उतना निश्चित हो जाता है।

ह्युएनसांग, जो ६२९ ई० से ६४५ ई० तक भारत में रहा, हर्षवर्धन और उसकी साम्राज्य-व्यवस्था का उल्लेख करता है।[२] बाण ने हर्षचरित में हर्ष के जीवन के कुछ अंश पर साहित्यिक शैली में प्रकाश डाला है। ह्युएनसांग के हर्ष-विषयक वर्णन तथा हर्षचरित के वर्णन की तुलना करने से यह निश्चित हो जाता है कि दोनों के हर्ष एक हैं।[३] राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद मन्त्रियों ने हर्षवर्धन को जो प्रेरणा दी है, उसका ह्युएनसांग ने संक्षिप्त, किन्तु कमनीय वर्णन किया है।[४] इसी प्रकार हर्षचरित में राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद सिंहनाद ने हर्ष को प्रेरणा प्रदान की है।[५]

---

१. R. C Majumdar and others: An Advanced History of India, pp. 156 & 160.

२. P. V. Kane: The Harshacarita of Bāṇa Bhaṭṭa, Introduction, p. 6.

३. ibid., p. 6.

४. "The opinion of the people, as shown in their songs, proves their real submission to your eminent qualities. Reign then with glory over the land; conquer the enemies of your family; wash out the insult laid on your Kingdom and the deeds of your illustrious father. Great will your merit be in such a case. We pray you reject not our prayer."

—Samuel Beal, Buddhist Records of the Western World, p 211

५ हर्ष० पृ० २८३-२९२

बाण का जीवन

बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भिक अंश में अपने जीवन की एक झलक दी है। उससे ज्ञात होता है कि बाण के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। बाण की माता का देहान्त उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया। इसके बाद उनके पिता ने उनका पालन किया। श्रुतिस्मृतिविहित ब्राह्मणोचित कर्मों का सम्पादन करके उनके पिता भी चल बसे। उस समय बाण की अवस्था केवल चौदह वर्ष की थी। पिता की मृत्यु से बाण का हृदय रात-दिन जलने लगा। शोक के कम हो जाने से बालस्वभाव के कारण बाण अधिक स्वतन्त्र हो गये। वे देशों को देखने के कुतूहल से पितृपितामहोपार्जित द्वारा अर्जित विभव के रहने पर भी मित्रों के साथ घर से निकल पड़े। परिभ्रमण के पश्चात् वे अपनी जन्मभूमि को लौट आये। उनके आगमन से उनके बन्धु आनन्दित हुए।

कालक्रम से एक समय हर्ष के भाई कृष्ण ने बाण को बुलाया। बहुत विचार के अनन्तर बाण ने जाने के लिये निश्चय किया। उन्होंने प्रातःकाल स्नान किया और धवल दुकूल वस्त्र तथा अक्षमाला धारण की। उन्होंने परम भक्ति से भगवान् शिव की अर्चना की। अनेक विधियों से मंगल-मङ्गल सम्पादित कर दिये जाने के बाद प्रीतिकूट से निकले। पहले दिन चण्डिकावनवन कानन पार करके मल्लकूट नामक ग्राम में पहुँचे। वहाँ पर जगत्पति नामक सुहृद् ने उनकी सपर्या की। दूसरे दिन भगवती भागीरथी को पार करके यष्टिगृहक नामक ग्राम में रात

१. हर्षचरित के आधार पर बाण का वंशवृक्ष यथोऽङ्कित है—
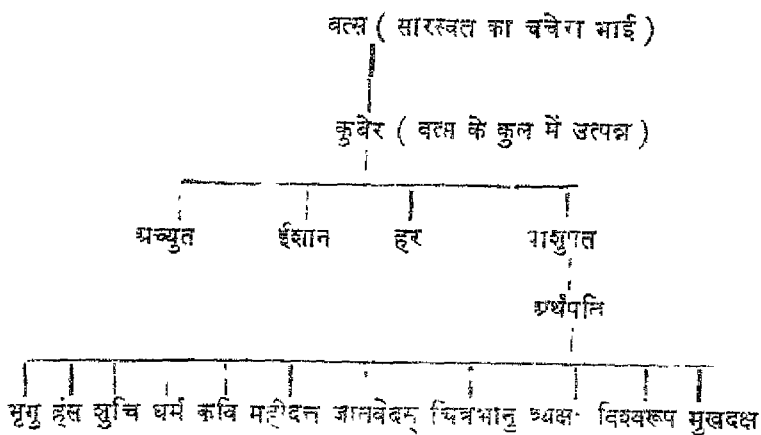
है। अतएव पुण्यराशि सुगृहीतनामधेय हर्ष का चरित वंशक्रम से सुनना चाहते हैं। आप कहें, जिससे भार्गववंश राजर्षि के चरित-श्रवण से शुचितर हो जाय।

इसके बाद बाण हर्ष के चरित का आरम्भ करते हैं। हर्षचरित के उपर्युक्त वर्णन से हम बाण के प्रारम्भिक जीवन की झलक पाते हैं।

बाण विवाहित थे। एक परम्परा के आधार पर यह ज्ञात होता है कि सूर्य-शतक के रचयिता मयूरभट्ट बाण के श्वशुर थे। बाण के एक पुत्र था, जिसका नाम भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट था। बाण के चन्द्रसेन तथा मातृषेण नामक दो पारशव भाई थे।

बाण के अनेक मित्र थे। उन्होंने हर्षचरित में उनकी लम्बी सूची प्रस्तुत की है। कवि ईशान, भद्रसेन तथा नारायण, वारबाण तथा वासबाण, देववाणी कवि वारणाकर, भरतनाट्यशास्त्र का ज्ञाता दिवाकर, प्राकृत-कवि वायुविकार, बन्दी अनङ्गबाण तथा सूचीबाण, कात्यायनिका चक्रवाकिका, विषवैद्य मयूरक, ताम्बूलदायक चण्डक, वैद्यपुत्र मन्दारक, पुस्तकवाचक सुदृष्टि, स्वर्णकारों का अध्यक्ष सिन्धुषेण, लेखक गोविन्द, चित्रकार वीरवर्मा, पुस्तकृत् कुमारदत्त, मृदङ्ग बजाने वाला जीमूतक, गायक सोमिल तथा ग्रहादित्य, सैरन्ध्री कुरङ्गिका, वंशी बजाने वाले मधुकर तथा पारावत, गीतिशास्त्र का मर्मज्ञ दर्दुरक, अङ्गमर्दिका केरलिका, नर्तक ताण्डविक, द्यूतक्रीड़ानिपुण आखण्डलिक, कृपक भीमक, युवक शैलूष शिखण्डक, नर्तकी हारिणिका, बौद्धमुनि सुमति, दिगम्बर वीरदेव, कथा कहनेवाला जयसेन, शिवसिद्धान्तानुयायी वक्रघोण, मन्त्रसाधक करालक, असुर-विवरव्यसनी (पाताल में घुसकर किसी यक्ष अथवा राक्षस को सिद्ध करके धन प्राप्त करने वाला) लोहिताक्ष, धातुवादी विहङ्गम, दर्दुर नामक वाद्य बजाने वाला दामोदर, ऐन्द्रजालिक चकोराक्ष, परिव्राजक ताम्रचूड बाण के मित्र थे।

बाण के मित्रों की सूची से यह ज्ञात होता है कि उनमें कुछ कवि और विद्वान् थे, कुछ कलाओं के ज्ञाता थे, कुछ संगीत तथा नृत्य में निपुण थे, कुछ साधु और संन्यासी थे, कुछ वैद्य तथा मन्त्रसाधक थे तथा कुछ परिचारक थे।

बाण के गुरु का नाम भर्वु था।[1]

दुर्गसिंह के कर्नाटकपञ्चतन्त्र से ज्ञात होता है कि 'अवनिपचक्रवर्तिनरेन्द्र-प्रवरहर्ष' ने बाण को 'वश्यवाणीकविचक्रवर्तिन्' की उपाधि प्रदान की थी।[2] इन्द्रायुध अश्व के समुज्ज्वल वर्णन के कारण उन्हें तुरङ्गबाण कहा जाता था।[3]

---

१. 'नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि॥' कादम्बरी, पृ० ३

२. S. V. Dixit : Bāṇa Bhaṭṭa : His life & Literature, p. 7.

३. ibid., p. 7.

बाण के ग्रन्थ—

१ कादम्बरी (पूर्वभाग)—बाण ने कादम्बरी के केवल पूर्वभाग की रचना की है। बाण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र भूषण ने कादम्बरी पूरी की। कादम्बरी कथा है।

२. हर्षचरित—यह आख्यायिका है। इसके आठ उच्छ्वासों में बाण ने अपने प्रारम्भिक जीवन तथा हर्ष के जीवन के प्रारम्भिक अंश का वर्णन किया है। कुछ विद्वानों का कथन है कि हर्षचरित अधूरा है, पर विचार करने से यह मत पुष्ट नहीं प्रतीत होता। यदि हम सावधानी से हर्षचरित का अवलोकन करें, तो यह स्पष्ट होगा कि हर्षचरित पूर्ण रचना है।

हर्षचरित को लिखने से पहले बाण ने यह विचार किया था कि हर्ष के जीवन के केवल कुछ अंश का वर्णन करना है। जब श्यामल, बाण से हर्षचरित का वर्णन करने के लिये कहता है, तब बाण कहते हैं—'आर्य, आपने युक्तियुक्त बात नहीं कही। आपके कुतूहल के मनोरथ को अघटित-सा समझता हूँ। प्रायः स्वार्थ की इच्छाएं सम्भव और असम्भव के विवेक से शून्य होती हैं। दूसरे के गुणों में अनुरक्त, प्रियजनों की कथा को सुनने के रस से मोहित बुद्धि बड़े लोगों के विवेक का अपहरण कर लेती है। आर्य, देखें, कहाँ परमाणु के परिमाण वाला अल्प हृदय और कहाँ अनन्त ब्रह्माण्ड सा व्याप्त देव का चरित ! कहाँ परिमित वर्ण वाले कतिपय शब्द और कहाँ नरेन्द्र के गुण ! वे सर्वज्ञ के भी अविषय हैं, वाचस्पति के भी अगोचर हैं, सरस्वती के लिये भी अतिभार है, तो फिर हम जैसों के विषय में कहना ही क्या ? कौन पुरुष सौ की सौ आयु से भी इनके चरित का वर्णन कर सकता है। यदि एक अंश के प्रति कुतूहल हो, तो हम प्रस्तुत हैं। कतिपय अक्षरों को प्राप्त करने में समर्थ जिह्वा का कहाँ उपयोग हो सकता है ? आप लोग श्रोता हैं, श्रीहर्षचरित का वर्णन किया जाता है।'[१]

बाण के इस कथन से ही बाण के विचार का पता लगता है। बाण, हर्ष के जीवन के केवल एक अंश का वर्णन करना चाहते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है ? यह तो हम जानते ही हैं कि बाण किसी वस्तु का संक्षिप्त वर्णन नहीं करते। वे उस वस्तु की समुपस्थापना अनेक दृष्टियों से करते हैं। इसलिये हर्षचरित के आठ उच्छ्वासों में छोटी-सी घटना का वर्णन हो सका है। कादम्बरी की भी कथा बहुत छोटी है पर बाण की कल्पना ने कादम्बरी को विस्तृत कर

असमर्थता व्यक्त की है, उसका तात्पर्य यह है कि बाण हर्ष के पूरे जीवन का वर्णन नहीं कर सकते थे। जब उन्होंने थोड़े-से अंश का ७ उच्छ्वासों में वर्णन किया है, तो पूरे जीवन के वर्णन के लिये पचासों उच्छ्वासों की योजना करनी पड़ती। यह बहुत ही कठिन कार्य था। अतः बाण ने पहले ही व्यक्त कर दिया है कि हर्ष के पूरे जीवन का वर्णन नहीं हो सकता। जब बाण ने इस प्रकार विचार कर लिया, तो उन्हें यह भी सोचना था कि हर्ष के जीवन के कितने अंश का वर्णन किया जाय, जो पूर्ण काव्य की समग्रता की दृष्टि से समीचीन हो। इसके लिये बाण ने राज्यश्री की प्राप्ति तक के अंश का वर्णन किया। ऐसा उन्होंने दो दृष्टियों से किया। एक तो राज्यश्री की प्राप्ति का वर्णन भी आवश्यक था और दूसरी बात यह भी है कि राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति की ओर सङ्केत भी हो जायगा। यहीं बाण के 'एकदेश' का समापन हो जाता है। यह अपने में पूर्ण है। हर्षचरित में राज्यश्री की प्राप्ति ही फल है। बाण स्वयं कथा की समाप्ति की सूचना देते हैं—तत्र च राज्यश्रीप्रत्यानिकरकथां कथयत्येव तस्मिन् प्रणयिभ्यो रविरवततार गगनतलात्[1]

यदि बाण आगे का वर्णन करते, तो इस विषय का समापन नहीं कर सकते थे जिसका समापन उन्होंने राज्यश्री की प्राप्ति के वर्णन के द्वारा किया। बाण ने हर्ष के जीवन का वर्णन केवल एक अंश तक किया। राज्यश्री की प्राप्ति पर उन्होंने कथा समाप्त कर दी। इसका प्रमाण अन्त का [illegible] है।

फ्यूरर (Führer) के द्वारा सम्पादित हर्षचरित के अष्टम उच्छ्वास के अन्त में 'भद्रमस्तु' प्रयोग प्राप्त होता है।[2] यह प्रयोग माङ्गलिक है और ग्रन्थ की समाप्ति की सूचना देता है। अन्य उच्छ्वासों के अन्त में 'भद्रमस्तु' प्रयोग नहीं हुआ है। इससे अष्टम उच्छ्वास का अन्य उच्छ्वासों से वैशिष्ट्य प्रतीत होता है। कवि ने ग्रन्थ की पूर्णता को सूचित करने के लिये यह प्रयोग किया है।

हर्षचरित का अन्तिम वाक्य माङ्गलिक है—

'सन्ध्या-समय का अवसान होते ही निशा नरेन्द्र के लिये उपहार में चन्द्रमा ले आई; मानो निज कुल की कीर्ति अपरिमित यश के प्यासे उस राजा के लिये मुक्ताशैल की शिला से बना पात्र ले आई; मानो राजाओं द्वारा अभिषेक का आरम्भ करने के लिये उद्यत उस राजा के लिये आशीर्वाद [illegible] ले आई;

---

१. हर्ष०, पृ० ४०६

२. श्रीहर्षचरितमहाकाव्य (फ्यूरर द्वारा सम्पादित), पृ० ३९२

मानो आर्यावर्त के द्वीपों को जीतने की इच्छा से प्रस्थान किये हुए उस राजा के लिये श्वेतद्वीप का दूत ले आई।[1]

उपर्युक्त प्रमाणों के आलोक में देखने से यह प्रकट होता है कि हर्षचरित पूर्ण रचना है।

३. चण्डीशतक—इसमें १०२ श्लोक हैं। इसमें बाण ने चण्डी की स्तुति की है।

इनके अतिरिक्त शिवस्तुति, मुकुटताडितक तथा शारदचन्द्रिका भी बाण की रचनायें मानी जाती हैं।

पार्वतीपरिणय बाण की कृति नहीं है। वह वामनभट्टबाण की रचना है। रत्नावली को बाण की रचना समझना कल्पनामात्र है।

बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्

बाण के विषय में आभाणक प्रचलित है—बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्। सारा संसार बाण का जूठन है। इसका तात्पर्य यह है कि बाण ने जगत् की सभी वस्तुओं का चित्रण किया है। बाण वेद-वेदाङ्ग, रामायण, महाभारत, पुराण, दर्शन, लोकज्ञान, साहित्य, सङ्गीत आदि के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपने काव्यों में इनका उपयोग किया है। भारतीय समाज के विविध सोपानों, भारतीय संस्कृति की अमृतस्वरूप रसधाराओं, मानव जीवन की रहस्यमय अनुभूतियों, लोकचित्रण की मनोहर छवियों, प्रकृति की पल-पल परिवर्तनशील छवियों, विचारवीथियों की शत-शत केलियों आदि का वह रम्य परिकल्पन बाण की रचनाओं में प्राप्त होता है, जो अपनी सरसता, छटा और वैभव से संस्कृतसाहित्य के मनीषियों को आनन्द प्रदान करता रहा है। काव्य के क्षेत्र में जो अभीष्ट था, कल्पना की उड़ान की जो सीमा थी, कवि के समस्त चित्रण की जो भूमिका विद्यमान थी, उन सबकी भव्य-भव्य प्रतिकृति बाण के काव्यों में देखी जा सकती है। बाण ने जिस पद्धति का सूत्रपात किया, वह अद्भुत है। उस पद्धति का अतिक्रमण करने वाला गद्यकार आज तक उत्पन्न ही नहीं हुआ।

बाणभट्ट ने जिन उक्तियों से संस्कृत साहित्य का सम्भूषण किया है, उन्हीं के आधार पर अनेक परवर्ती कवियों ने भी साहित्य की सर्जना की है। परवर्ती कवियों की रचनाओं में बाण की कल्पनाओं, भाव-रेखाओं, चिन्तनपद्धतियों, काव्यसौष्ठव की विधाओं आदि का प्रतिबिम्बन परिलक्षित होता है। बाणभट्ट संस्कृत-साहित्य के ऐसे मनीषी हैं, जिनकी प्रतिभा के चाकचक्य से कविमण्डल प्रभावित है और जिनकी अलौकिक अभिव्यञ्जनाओं की छटा दर्शनीय है। बाण ने साहित्य की

---

१. हर्ष०, पृ० ४११–४१२

प्रत्येक भङ्गिमा और विच्छित्ति का, रसों और अलंकारों के मनोज्ञ सन्निवेश का रमणीय कलेवर प्रस्तुत किया है। बाण ने अनेक प्रकार के चरित्रों की योजना की है। उनके चरित्र मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को लेकर हमारे सम्मुख आते हैं। परिस्थितियों की गम्भीरता का चित्रण किया गया है और उनके समाधान के सुदृढ़ धरातल का निर्माण किया गया है। त्याग, तपश्चर्या, प्रेम, स्नेह, मैत्री आदि के मनोरम निरूपण के द्वारा जीवन को आनन्दमय बनाने का सन्देश दिया गया है। बाण अपने चरित्रों के द्वारा उस लोक के निर्माण की प्रेरणा प्रदान करते है, जो ईर्ष्या, द्वेष, काम, लोभ आदि से रहित है और जिसमे आनन्द है। परवर्ती कवियों ने बाण की इन सकल विधाओं का अनुकरण किया है। बाण सैकड़ों वर्षो से संस्कृत के गद्यसाहित्य को प्रभावित करते आ रहे हैं। ऐसा लगता है कि संस्कृत-साहित्य के गद्यकार को वह क्षेत्र ही नही मिल रहा है, जहाँ बाणभट्ट का पदार्पण न हुआ हो। साहित्य जगत् के सभी पदार्थ बाण की सूक्ष्म दृष्टि की परिधि में आ जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक—इस पुस्तक में 'आदान' में बाणभट्ट पर बाल्मीकि और कालिदास के प्रभाव का निरूपण किया गया है। इन दो कवियों ने बाण की चिन्तन-पद्धति को प्रभावित किया है। 'प्रदान' मे संस्कृत और हिन्दी के कवियों और लेखकों पर बाण के प्रभाव का विवेचन किया गया है परिशिष्ट में कादम्बरी और फेअरी क्वीन की तुलना की गयी है। बाण की सूक्तियों का सङ्ग्रह भी परिशिष्ट में दे दिया गया है।

संस्कृत वाङ्मय के तत्वद्रष्टा परम पूज्य महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज जी ने पुस्तक का प्राक्कथन लिखने की कृपा की, एतदर्थ मैं उनके प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ।

पुस्तक मे मुद्रण-सम्बन्धी कुछ भूलें रह गयी हैं, इसके लिए मैं क्षमा-याचना करता हूँ।

—अमरनाथ पाण्डेय

—:o:—

ग्रादान

वाल्मीकि

वाल्मीकि आदि कवि हैं। उनके महाकाव्य रामायण का संस्कृत-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। बाणभट्ट वाल्मीकि से प्रभावित हैं। कादम्बरी और हर्षचरित में रामायण की कथाओं का उपयोग किया गया है। बाण दण्डकारण्य का वर्णन करते हुए राम और सीता का कमनीय अङ्कन करते हैं।[1] रामायण में पम्पासर का विस्तृत वर्णन किया गया है। [2] बाण ने कादम्बरी में पम्पासर का चित्रण किया है। बाण को निश्चित ही वाल्मीकि से प्रेरणा मिली है। सर का वर्णन करते हुए 'बालिनिर्वासितेन संचरता प्रतिदिनमृष्यमूकवासिना सुग्रीवेणा-वलुप्तफलनकुसुमाभि.[3] के द्वारा बाण ने वाली तथा सुग्रीव की कथा को भी प्रस्तुत कर दिया है।

वाल्मीकि के वर्णन विस्तृत हैं। जब वे किसी परिस्थिति, दृश्य, पात्र या घटना का चित्रण करने लगते हैं, तो उसके स्वरूप को समग्रदृष्टि से प्रस्तुत करना चाहते हैं। राम के विलाप का वर्णन तीन सर्गों में हुआ है। [4] राम के द्वारा किया गया वर्षाऋतुवर्णन विस्तृत है।[5] बाण ने वाल्मीकि की वर्णनप्रक्रिया का अनुकरण किया है।

वाल्मीकि की भाँति बाण भी वस्तु के प्रत्येक अङ्ग का वर्णन करते हैं। वाल्मीकि के वर्णन अधिक प्रवाहमय और स्वाभाविक हैं, जब कि बाण के वर्णन कम। वाल्मीकि के वर्णनो में ऋजुता है, जबकि बाण के वर्णनों में भङ्गिमा है।

बाण के प्रकृति-वर्णन पर भी वाल्मीकि का प्रभाव है। वाल्मीकि प्रकृति के प्रत्येक दृश्यको उभारते जाते हैं और कमनीय रंगों की योजना करते जाते हैं। बाण में भी यह विशेषता प्राप्त होती है। रामायण में चित्रकूट की प्रकृति का नितान्त मनोज्ञ वर्णन समुपलब्ध होता है। यहाँ वाल्मीकि का हृद्य सन्निवेश

---

१. का०, पृ० ६४–६७

२. का०, पृ० ६६–७०

३. वाल्मीकीयरामायण, किष्किन्धा-काण्ड, प्रथम सर्ग

४. वा०रा०, अरण्यकाण्ड, सर्ग ६१–६३

५. वा०रा०, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग २८

दर्शनीय है—धातुओं से विभूषित चित्रकूट के प्रदेश सुन्दर लग रहे हैं। कुछ चाँदी की भाँति हैं, कुछ रक्त की भाँति हैं। कुछ पीले और मञ्जिष्ठ वर्णों के हैं, कुछ श्रेष्ठ मणियों की भाँति हैं, कुछ पुष्पराज के समान उद्भासित हो रहे हैं, कुछ स्फटिक की भाँति हैं, कुछ केवड़े के पुष्प की भाँति सुन्दर हैं। कुछ प्रदेश नक्षत्रों और पारे की भाँति लग रहे हैं।[1] वाल्मीकि ने इस प्रसङ्ग में अनेक रंगों की योजना की है। बाण ने भी अनेक रंगों के गुच्छों से चाण्डालकन्यका के सौन्दर्य का ललित उन्मीलन किया है।[2] जब वाल्मीकि वृक्षों और लताओं का वर्णन करने लगते हैं, तो उनकी पूरी सूची उपस्थित कर देते हैं। राम वृक्षों से सीता के विषय में पूछते हैं। वृक्षों के नाम हैं—कदम्ब, विल्व, अर्जुन, ककुभ, तिलक, अशोक, ताल, जामुन, कर्णिकार, आम, शाल, कटहल, कुरव, धव, अनार, वकुल, पुन्नाग, चन्दन, आदि।[3] बाण ने भी जाबाल्याश्रम के वर्णन के प्रसङ्ग में इसी प्रकार की योजना की है। आश्रम वनों से घिरा हुआ है। वनों में वृक्ष और लतायें हैं—ताल, तिलक, तमाल, हिन्ताल, वकुल, एलालता, नारियल, लोध्र, लवली, लवङ्ग, आम, केतकी, पूगीलता।[4]

वाल्मीकि ने शरद् ऋतु का कमनीय वर्णन किया है।[5] बाण ने हर्षचरित में शरद् का वर्णन किया है।[6] यहाँ वाल्मीकि के वर्णन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है।

बाण ने वाल्मीकि के भावों और कल्पनाओं को भी ग्रहण किया है। रामायण और बाण के ग्रन्थों के समान भाव वाले उद्धरणों से यह बात पुष्ट हो जाती है। दोनों कवियों के अधोऽङ्कित उद्धरण अवलोकनीय हैं—

---

१ केचिद्रजतसंकाशाः केचित् क्षतजसंनिभाः।
   पीतमाञ्जिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः ॥५॥

   पुष्पार्ककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः।
   विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः ॥६॥

वा० रा०—अयोध्याकाण्ड, सर्ग ९४

२. का०, पृ० ३१–१४
३. वा० रा०, अरण्यकाण्ड, सर्ग ६०
४. का०, पृ० ११६
५. वा०रा०, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग३०
६. हर्ष०, पृ० १२१–१२२

वा० रा०—'समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।'[1]
का०—'स्थैर्येणाचलानां गाम्भीर्येण सागराणाम्'[2]
वा० रा०—'विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥
धनदेन समस्त्यागे'[3]
का०—'कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन ·····मुखे शशिना'[4]
वा० रा०—'सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ।'[5]
हर्ष०—स्फुरत्तरलतारका रोहिणीव कलावतः'[6]
वा० रा०—'मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहितेरताः ।'[7]
का०—'इङ्गिताकारवेदिभिः'[8]
वा० रा०—'तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रहिते निविष्टैर्वृतोऽनुरक्तैः कुशलैः समर्थैः ।'[9]
का०—'असकृदालोचितनीतिशास्त्रनिर्मलमनोभिरलुब्धैः स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः'[10]
वा० रा०—'प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः ।'[11]
हर्ष०—'प्रभातायां च शर्वर्यां'[12]
वा० रा०—'गजतुल्यगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ।'[13]
हर्ष०—'गतं मतङ्गजैः'[14]
वा० रा०—'भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ।'[15]
हर्ष०—'अथ चन्द्रसूर्याविव स्फुरद्यशःप्रतापाक्रान्तभुवनावभिरामदुर्निरीक्षौ'[16]
वा० रा०—'दुन्दुभिस्वरकल्पेन गम्भीरेणानुनादिना ।'[17]

---

१. वा० रा०, बालकाण्ड १।१७
२. का० पृ० १३१
३. वा० रा०, बालकाण्ड १।१८-१९
४. का, पृ० १५
५. वा० रा०, बालकाण्ड १।२८
६. हर्ष०, पृ० १७६
७. वा० रा०, बालकाण्ड ७।१
८. का०, पृ० २०
९. वा० रा० बालकाण्ड ७।२४
१० का०, पृ० १९-२०
११. वा० रा०, बालकाण्ड २३।१
१२. हर्ष०, पृ० २६६
१३. वा० रा०, बालकाण्ड ४०।१८
१४. हर्ष०, पृ० २०६
१५. वा० रा०, बालकाण्ड ४०।२०
१६. हर्ष०, पृ० १९८
१७. वा० रा०, अयोध्याकाण्ड २।२

का०— 'दुन्दुभिनादगम्भीरेण स्वरेण'[१]
वा० रा० —'यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम् ।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ॥'[२]
का०—'जन्मान्तरकृतं हि कर्म्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि'[३]
वा० रा०—'विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ।'[४]
हर्ष०—'दरिधन्वा ध्वले वासंसी वसुमती ।'[५]
वा० रा०—'विभ्राजमानं वपुषा सूर्यवैश्वानरप्रभम् ।'[६]
का०—'द्वितीय इव भगवान् विभावसुरतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमू
वा० रा०—'दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् ।'[८]
हर्ष०—'विरलितवलाहके'[९] तथा 'सीदत्सौदामनीदामनि'[१०]
वा० रा०—'घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण ।
नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसानघ ॥'[११]
हर्ष० — मयूरमदमुषि[१२]
वा० रा०—'शक्यास्तु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु ताराकनिशाकराणाम
लीलासु चैवोत्तमवारणानां श्रियं विभज्याद्यशरत्प्रवृत्ता
हर्ष० —'सप्तच्छदधूलिधूसरितसमीरे'[१४]
'भासुरभास्वति शुचिशशिनि तरुणतरताराणे'[१५]
वा० रा०—'मदप्रगल्भेषु च वारणेषु गवां समूहेषु च दर्पितेषु ।'[१६]
हर्ष०—'उन्मददन्तिनि दर्पक्षीवोक्षके'[१७]
वा० रा०— सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का भूमिश्चिरोद्घाटितसान्द्ररेणु
हर्ष०—'क्षीणपङ्कचक्रवाले'[१९]

---

१. का०, पृ० ४९६
२ वा० रा०, अयोध्याकाण्ड ६३।६
३. का०, पृ० १६१
४. वा० रा०, अयोध्याकाण्ड २६।२३
५. हर्ष०, पृ० २९१
६. वा० रा०, अरण्यकाण्ड १।१
७. का०, पृ० १०६
८. वा० रा०, किष्किन्धाकाण्ड ३०।५
९. हर्ष०, पृ० १२१
१०. वही, पृ० १२२
११. वा०रा०, किष्किन्धाकाण्ड ३०
१२. हर्ष०, पृ० १२१
१३. वा०रा०, किष्किन्धाकाण्ड ३०
१४. हर्ष०, पृ० १२२
१५. वही, पृ० १२२
१६. वा०रा०, किष्किन्धाकाण्ड ३०
१७. हर्ष०, पृ० १२२
१८. वा०रा०, किष्किन्धाकाण्ड ३०
१९ हर्ष०, पृ० १२२

कालिदास

बाण ने कालिदास का अनुकरण किया है। हर्षचरित के प्रारम्भ में बाण कालिदास की सूक्तियों की प्रशंसा करते हैं—कालिदास की मधुर तथा सरस सूक्तियों को सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता?[1] कालिदास की सूक्तियों से बाण प्रभावित हैं। बाण ने महाकवि की भङ्गिमा, वर्णन-परिपाटी आदि का अनुकरण किया है और उनको अपनी शैली के अनुकूल बनाया है। कालिदास की कल्पना, अलङ्कार-योजना तथा विषय-निर्वाह की पद्धति ने बाण को प्रभावित किया है।

कादम्बरी की कथा बृहत्कथा से ली गयी है। बृहत्कथा नहीं मिलती। उसका रूपान्तर कथासरित्सागर प्राप्त होता है। बाण ने नामों में परिवर्तन किया है। कथासरित्सागर में काञ्चनपुरी नाम प्राप्त होता है। बाण ने काञ्चनपुरी के स्थान पर विदिशा नाम रखा है—विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्। यह परिवर्तन मेघदूत के 'तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।' के आधार पर किया गया प्रतीत होता है। चाण्डालकन्या के वर्णन के प्रसङ्ग में 'यक्षाधिपलक्ष्मीमिवालकोद्भासिनीम्' के द्वारा बाण अलका का स्मरण करते प्रतीत होते हैं।

बाण ने कालिदास के अलका-वर्णन के आधार पर उज्जयिनी का वर्णन किया है।[2]

अज को देखने के लिये निकली हुई स्त्रियों के वर्णन का अनुकरण करके बाण ने चन्द्रापीड को देखने के लिये उत्सुकता से दौड़ी हुई स्त्रियों का वर्णन किया है।

---

१. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ।।
—हर्ष०, पृ० १०

२. श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, सारस्वतीसुषमा (१६ वर्ष, ३ अङ्क, सं० २०२१)—पृ० २२४

'प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ।।'[1] का 'काश्चिदार्द्रालक्तकरसपाटलितचरणपुटाः कमलपरिपीतबालातपा इव नलिन्यः'[2] पर प्रभाव है ।

'अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती ।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा ।'[3] के आधार पर 'काश्चित् ससम्भ्रमगतिविगलितमेखलाकलापाकुलितचरणकिसलयाः शृङ्खलासन्दानमन्दमन्दसञ्चारिण्य इव करिण्यः'[4] की रचना हुई है ।

'तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ।।'[5] की अनुकृति पर बाण ने 'अन्याश्च मरकतवातायनविवरविनिर्गतमुखमण्डला विकचकमलकोषपुटामम्बरतलसञ्चारिणीं कमलिनीमिव दर्शयन्त्यो ददृशुः ।'[6] की रचना की है ।

चन्द्रापीड की दिग्विजय-यात्रा के वर्णन पर रघुवंश के रघुदिग्विजय के वर्णन का प्रभाव है ।[7]

तपश्चर्या में रत पार्वती के वर्णन के आधार पर महाश्वेता का चित्रण किया गया है ।

'यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम् ।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ।।'[8] का 'बालरश्मिप्रभाभिरिव निर्मिताभिरुन्मिषत्तडित्तरलतेजस्ताम्राभिरचिरस्नानावस्थितविरलवारिकणतया प्रणामलग्नपशुपतिचरणभस्मचूर्णाभिरिव जटाभिरुद्भासितशिरोभागाम्'[9] पर प्रभाव है ।

---

१. रघु०, ७।७
२. का०, पृ० २५०
३. रघु०, ७।१०
४. का०, पृ० २५०
५. रघु०, ७।११
६. का०, पृ० २५२
७. श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, सारस्वतीसुषमा (१६ वर्ष, ३ अङ्क संवत् २०२१)—पृ० २२५-२२६
८. कुमार०, ५।९
९. का०, पृ० ३९२

'विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् ।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥'[1] की छाया गौरीसिंहसटामयेनेव चामररुचिराकृतिना स्तनयुगलमध्यनिबद्धग्रन्थिना कल्पतरुलतावल्कलेन कृतोत्तरीयकृत्याम्'[2] पर दृग्गोचर हो रही है।

जिस प्रकार आकाशवाणी रति को सान्त्वना देती है कि तुम्हारा पति तुम्हें मिलेगा, उसी प्रकार कादम्बरी में भी आकाश से उतर कर एक दिव्य पुरुष महाश्वेता को सान्त्वना देता है। कुमारसम्भव में रति वसन्त से कहती है कि अग्नि देकर मुझे पति के समीप पहुँचा दो। इसी प्रकार कादम्बरी में महाश्वेता तरलिका से कहती है कि तुम उठकर चिता बनाओ।

कालिदास के प्रभाव को प्रकट करने के लिये उनके ग्रन्थों से तथा बाण के ग्रन्थों से उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

रघु०—'रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ॥'[3]

हर्ष०—'तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः ।
'करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ॥'[4]

रघु०—'अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव ।'[5]

हर्ष०—'अनापसहाया हि सत्त्ववन्तः ।'[6]

रघु०—'अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा ।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव ॥'[7]

का०—'स्वप्रभासमुदयोपहतगर्भगृहप्रदीपप्रभम् ।'[8]

रघु०—'स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः ।'[9]

का०—'समानवयोविद्यालङ्कारैः'[10]

रघु०—'तस्मै सम्यग्घुतो वह्निर्वाजिनीराजनाविधौ ।
प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ ॥'[11]

---

१. कुमार०, ५।८
२. का०, पृ० २९४
३ रघु०, १।९
४. हर्ष०, पृ० १०
५. रघु०, १।३७
६ हर्ष०, पृ० २७२
७. रघु०, ३।१५
८. का०, पृ० ११९
९. रघु०, ३।२८
१०. का०, पृ० २०
११. रघु०, ४।२५

हर्ष०—प्राज्याज्याहुतिप्रवर्धितप्रदक्षिणार्चिषं भगवन्तमाशुशुक्षणिं हुत्वा'[१]

रघु०—'आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ।'[२]

का०—'अप्रतिपाद्या हि परस्वता सज्जनविभवानाम् ।'[३]

रघु०—'कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।'[४]

हर्ष०—'एनेन खलु राजन्वती पृथिवी ।'[५]

रघु०—'स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान् गुणानपि ।'[६]

का०—'अभिषेकसलिलार्द्रदेहञ्च न लतेव पादपान्तरं निजपादपमुञ्च-
न्त्यपि तारापीडं तत्क्षणमेव सञ्चक्राम राजलक्ष्मीः ।'[७]

रघु०—'परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ।'[८]

का०—'अन्यामिव स्वकर्मफलपरिपाकोपचितामसाववशः नीयते भूमिम् ।'[९]

रघु०—'सततया वसुवृष्टिविसर्जनैर्नियमनादसतां च नराधिपः ।
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा ।।'[१०]

का०—'कोपे यमेन प्रसादे धनदेन···तेजसि सवित्रा च वसता'[११]

रघु०—'श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातैः—
वर्तेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः ।'[१२]

का०—'लोचनमयूखसन्तानेन नीलोत्पलदलमय इव दिवसो बभूव ।'[१३]

रघु०—'नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते ।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने ।।'[१४]

का०—रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ।।'[१५]

रघु०—'स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ।'[१६]

---

१. हर्ष०, पृ० ८९
२ रघु०, ४।८६
३. का०, पृ० ५७१
४. रघु०, ६।२२
५ हर्ष०, पृ० ११२
६ रघु०, ८।५
७ का०, पृ० ३३६
८ रघु० ८।८५
९. का०, पृ० ५०४
१०. रघु०, ९।६
११ का०, पृ० १५
१२. रघु०, ९।५१
१३. का०, पृ० २५३
१४. रघु०, १०।१६
१५. का०, पृ० १
१६ रघु०, १०।३०

हर्ष०—'कः खलु पुरुषायुषशतैरपि शक्नुयादविकलमस्य चरितं वर्णयितुम् ।'[1]

रघु०—'वर्णोदकैः काञ्चनशृङ्गमुक्तैस्तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन् ।'[2]

का०—'करपुटविनिर्गताभिः कुङ्कुमजलधाराभिः पिञ्जरीक्रियमाणकायो लाक्षाजलच्छटाप्रहारपाटलीकृतदुकूलो मृगमदजलबिन्दुशबलचन्दनस्थासकः कनकशृङ्गकोशैश्चिरं चिक्रीड ।'[3]

रघु०—'न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः ।
अदृष्टमभवत्किञ्चिद्व्यभ्रस्येव विवस्वतः ॥'[4]

का० 'यस्य चानेकचारपुरुषसहस्रसञ्चारनिचिते चतुरुदधिवलयपरिखाप्रमाणे धरणीतले भवन इवाविदितमहरहः समुच्छ्वसितमपि राज्ञा नासीत् ।'[5]

रघु०—'दूरापवर्जितच्छत्रैस्तस्याज्ञां शासनार्पिताम् ।
दधुः शिरोभिर्भूपाला देवाः पौरन्दरीमिव ॥'[6]

का०—'आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासनइवापर.'[7]

रघु०—'अङ्गुलीकिसलयाग्रतर्जनं भ्रूविभङ्गकुटिलं च वीक्षितम् ।
मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः ॥'[8]

का०—'कदाचित् सङ्केतवञ्चिताभिः प्रणयिनीभिराबद्धभङ्गुरभ्रूकुटिभिरारणितमणिपारिहार्य्यमुखरभुजलताभिर्बकुलकुसुमावलीभिः संयतचरणः नखकिरणविमिश्रैः कुसुमदामभिः कृतापराधो दिवसमताड्यत ।'[9]

कुमार०—'उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम् ।'[10]

का०—'अभिनवाभिव्यज्यमानरागरमणीयःसूर्य्योदय इव कमलवनस्य'[11]

कुमार०—'बभूव तस्य श्चतुरस्रशोभि व विभक्तं नवयौवनेन ।'[12]

का०—'क्रमेण च कृत मेवनुपि······ नवयौवनेन पदम् ।'[13]

---

१. हर्ष, पृ० १३४
२. रघु०, १६ ७०
३. का०, पृ० १७६
४. रघु०, पृ० १७ ४८
५. का०, पृ० १७७
६. रघु०, १७।७९
७ का० पृ० ११
८. रघु०, १६।१७
९. का०, पृ० १८०
१०. कुमा ०, ११३२
११. का०, पृ० ७३१
१२. कुमार०, ११३२
१३. का०, पृ० ४१२

अभि०—'एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः'[१]

का०—'अदूरकोपा हि मुनिजनप्रकृतिः।'[२]

अभि०—'अतिस्नेहः पापशङ्की।'[३]

का०—'सुहृत्स्नेहकातरेण मनसा तत्तदशोभनमाशङ्कमानः'[४]

अभि०—'किं नु खलु बालेऽस्मिन् औरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः।'[५]

हर्ष०—'त्वयि तु विनापि कारणेन बन्धाविव बद्धपक्षपातं किमपि स्निह्यति मे हृदयं दूरस्थेऽपि इन्दोरिव कुमुदाकरे।'[६]

ऋतु०—'रवेर्मयूखैरभितापितो भृश विदह्यमानः पथि तप्तपांशुभिः।
अवाङ्मुखोऽजिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फणी मयूरस्य तले-
निषीदति॥'[७]

का०—'तथाहि एष विकचोत्पलवनरचनानुकारिणमुत्पतच्चारुचन्द्रकशतं हरिणलोचनद्युतिशबलमभिनवशाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमातपाहतो निःशङ्कमहिः।'[८]

बाण की रचनाओं पर कालिदास का बहुत अधिक प्रभाव है। यहाँ संक्षेप में ही विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

---

१. अभि०, अङ्क ४, पृ०२०८
२. का०, पृ० ४२७
३. अभि०, अङ्क ४, पृ० २१६
४. का०, पृ० ४५२
५. अभि०, अङ्क ७, पृ० ३०८
६. हर्ष०, पृ० ८०
७. ऋतु०, १। १३
८. का० पृ० १३८

प्रदान

भूषण भट्ट

भूषण भट्ट, बाण के पुत्र थे। उन्होंने कादम्बरी पूरी की। भूषण अपने पिता से अत्यधिक प्रभावित हैं। वे कादम्बरी के उत्तरार्ध के प्रारम्भ में अपने पिता को प्रणाम करते हैं —

'आर्यं यमर्चति गृहे गृह एव लोकः
पुण्यैः कृतश्च यत एव ममात्मलाभः।
सृष्टैव येन च कथेयमनन्यशक्या
वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि ॥'[1]

कादम्बरी की समाप्ति न होने के कारण सज्जन दुःखित थे, इसलिये मैं रचना करने के लिये प्रवृत्त हो रहा हूँ। रचना का कारण कवित्व का दर्प नहीं है—

'याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥'[2]

भूषण ने कादम्बरी की प्रशंसा की है—

'कादम्बरीरसभरेण समस्त एव
मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम् ।'[3]

भूषण, बाण की कल्पना, वाक्ययोजना, कथा, विषयनिर्वाह, भाषा आदि का अनुकरण करते हैं। उनका प्रकृतिवर्णन बाणसे प्रभावित है। कादम्बरी के उत्तरार्ध की भाषा तो भूषण की है, पर कथा की काया बाण की है। बाण ने कथा की सामग्री एकत्र की थी, भूषण ने उसका उपयोग किया—

बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि
वप्त्रेव यान्युचितकर्मबलात्कृतानि।
उत्कृष्टभूमिविततानि च यान्ति पोषं
तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि ॥'[4]

---

१. का० उ०, पृ० २३६
२. वही, पृ० २३६
३. वही, पृ० २४०
४. वही, पृ० २४०

भूषण तथा बाण के समान भाव तथा पदावली वाले उद्धरण अधोलिखित

का० उ०—'मदनेन वा......यौवनेन वानुरागेण वा मदेन वा हृद वान्येन वा केनापि दत्त:'[१]

का०—'किं मनसा किं मनसिजेन, किमभिनवयौवनेन, किमनुरागेण उपदिश्यमाना किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण'[२]

का० उ०—हृदये मन्युना......मुखे श्वसितेन......चक्षुषि च बाष्पेण

हर्ष०—'चक्षुषि सलिलेन, मुखशशिनि श्वसनेन, हृदये हुताशनेन'[४]

का० उ०—'दुस्त्यजा जन्मभूमि:'[५]

हर्ष०—'दुस्त्यजा जन्मभूमय:'[६]

का० उ०—'विषादशून्येन च मुखेन'[७]

का०—'विषादशून्यामश्रुजलप्लुतां दृशम्'[८]

का० उ०—'मदलेखा तु द्वितीयं हृदयमस्या:।'[९]

का०—'द्वितीयमिव हृदयं बालमित्रम्।'[१०]

का० उ०—'भगवतस्तिग्मदीधितिरुत्तप्तकनकद्रवस्फुलिङ्गपिङ्गलद्युति'[११]

का०—'तप्तकनकद्रवेणेव बहिरुपलिप्तमूर्त्ति:'[१२]

का० उ०—'मधुमासलक्ष्मीरिव पल्लवोद्भेदमुल्लसितरागपल्लवोद्ग रिव कुसुमनिर्गमम्'[१३]

का०—'मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन'[१४]

का० उ०—'सा तु किंचिदवनतमुखी'[१५]

का०—'अवनतमुखी राजानं साभ्यसूयमिवापश्यत्।'[१६]

का० उ०—सुदूरमपक्रान्तोपि बलादेवाकृष्य'[१७]

का०—'अनया च कालकलया सुदूरमतिक्रान्त:'[१८]

---

१. का० उ०, पृ० २४२
२. का०, पृ० ३२४
३. का० उ०, पृ० २४५
४. हर्ष०, पृ० २७६
५. का० उ०, पृ० २४६
६. हर्ष०, पृ० २६
७. का० उ०, पृ० २५०
८. का०, पृ० १०२
९. का० उ०, पृ० २५८
१०. का०, पृ० ११२
११. का० उ०, पृ० २६१
१२. का०, पृ० १०९
१३. का० उ०, पृ० २६३
१४. का०, पृ० ४१२
१५. का० उ०, पृ० २६४
१६. का०, पृ० २११
१७. का० उ०, पृ० २६६
१८. का०, पृ० १०५

का० उ०—'अपि च मम जीवितमपि तवैव हस्ते वर्तते ।'[१]

का०—'त्वदायत्तं हि मे जीवितं राज्यञ्च ।'[२]

का० उ०—'विमलमणिकुट्टिनोदरसंक्रान्तप्रतिमः'[३]

का०—'अमलमणिकुट्टिमसंक्रान्तसकलदेहप्रतिविम्बतया'[४]

का० उ०—'निर्भरस्नेहगर्भेण सलिलभरमन्थरेणेव जलधरध्वनिना स्वरेण'[५]

हर्ष०—'दधोचस्तु नवाम्भोभरगम्भीराम्भोधरध्वाननिभया भारत्या नर्तयन्निव'[६]

का० उ०—'अन्यथा पुनर्धवलयद्भिरिव धवलतां सौधानाम्'[७]

का०—'अन्यथैव धवलयन्तीं कैलासगिरिम्'[८]

का० उ०—'तारदीर्घतरः शंखध्वनिरुदतिष्ठत् ।'[९]

का०—'सव्यात्तुशङ्खध्वनिरुदतिष्ठत् ।'[१०]

का० उ०—'सशेषनिद्रालसैः ''' मृगकदम्बकैरुन्मुच्यमानासूषरशय्यासु'[११]

का०—'सशेषनिद्राजिह्मिततारं चक्षुरुन्मीलयत्सु शनैःशनैरूषरशय्याधूसरक्रोडरोमराजिनु'[१२]

का० उ०—'सचक्षुषोऽप्यन्धाः ककुभोजाताः । सुनिष्पन्नमपि हतं जन्म । सुरक्षितमपि मुषितं जीवितफलम् । कं पश्यामि । कमालपामि । कस्मै विश्रम्भं कथयामि । केन सह सुखमासे । किमद्यापि मे जीवितेन कादम्बर्यापि । वैशम्पायनस्य कृते क्व गच्छामि । कं पृच्छामि । कमभ्यर्थये ।'[१३]

का०—'कथय त्वद्दृते क्व गच्छामि, कं याचे, कं शरणमुपैमि । अन्धोऽस्मि संवृत्तः, शून्या मे दिशो जाताः, निरर्थकं जीवितम्, अप्रयोजनं तपः, निःसुखाश्चलोकाः । केन सह परिभ्रमामि, कमालपामि ।'[१४]

---

१. का० उ०, पृ० २६६
२. का०, पृ० १८३
३. का० उ०, पृ० २६७
४. का०, पृ० २८
५. का० उ०, पृ० २६७
६. हर्ष०, पृ० ४२
७. का० उ०, पृ० २६९
८. का०, पृ० १८८
९. का० उ०, पृ० २७०
१०. का०, पृ० ४१
११. का० उ०, पृ० २७२
१२. का०, पृ० ८०
१३. का० उ०, पृ० २७४, २७५
१४. का०, पृ० ४८२

का० उ०—'पदमिव जलदकालस्य प्रतिपक्षमिव सर्वसंतापानां निजावासमिव जडिम्नो निर्गममार्गमिव सुरभिमासस्याश्रयमिव मकरध्वजस्योत्कण्ठाविनोदस्थानमिव रतेः'[१]

का०—'हृदयमिव हिमवतः, जलक्रीडागृहमिव प्रचेतसः, जन्मभूमिमिव सर्वचन्द्रकलानाम्, कुलगृहमिव सर्वचन्दनवनदेवतानाम्, प्रभवमिव सर्वचन्द्रमणीनाम्, निवासमिव सर्वमाघमासयामिनीनाम्, सङ्केतसदनमिव सर्वप्रावृषाम्, ग्रीष्मोष्मापनोदनोद्देशमिव सर्वनिम्नगानाम्, वडवानलसन्तापापनोदननिवासमिव सर्वसागराणाम्, वैद्युतदहनदाहप्रतीकारस्थानमिव सर्वजलधराणाम्, इन्दुविरहदुःसहदिवसातिवाहनस्थानमिव कुमुदिनीनाम्, हरहुताशननिर्वापणक्षेत्रमिव मकरध्वजस्य'[२]

का० उ०—दृष्टो दर्शनीयानामवधिरेषः।'[३]

का०—'अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः, दृष्ट आह्लादनीयानामवधिः, वीक्षिता मनोहराणां सीमान्तलेखा'[४]

का० उ०—ममोत्सङ्गमुत्सृज्य समानसुखदुःखा वधूरपि न पुत्रक त्वयोपात्ता।'[५]

का०—'सर्वथा समानसुखदुःखतां दर्शयता विधिनाऽपि भवतेव वयमनुवर्त्तिताः'[६]

का० उ०—'इत्येवं वादिनो नरपतेर्वचनमाक्षिप्य'[७]

का०—'एवं वादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत्'[८]

का० उ०—'अपि परिणामेपि पुण्यवतां केषांचिदेव हि केशैः सह धवलिमानमापद्यन्ते चरितानि।'[९]

का०—'गुरूपदेशः प्रशमहेतुर्वयःपरिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणामयति।'[१०]

का० उ०—'गाढं सुचिरमालिङ्ग्य'[११]

का०—'प्रेम्णा गाढमालिलिङ्ग।'[१२]

---

१. का० उ०, पृ० २७६
२. का०, पृ० ६१३,६१४
३. का० उ०, पृ० २७७
४. का०, पृ० ३७५
५. का० उ०, पृ० २८५
६. का०, पृ० २२३
७. का० उ०, पृ० २८६
८. का०, पृ० ५४
९. का० उ०, पृ० २९१
१०. का०, पृ० ३१४,३१५
११. का० उ०, पृ० २९६
१२. का०, पृ० २९२

का० उ०—'लतागहनानि तरुमूलानि'[1]

का०—'तरुलतागहनानि'[2]

का० उ०—'सर्पनिर्मोकपरिलघुनी···परिधाय वाससी'[3]

का०—'विषधरनिर्म्मोकपरिलघुनी धवले परिधाय धौते वाससी'[4]

का० उ०—'उड्डीनैरेव प्राणैः'[5]

का०—'उत्क्रान्तैरिव···असुभिः'[6]

का० उ०—सैवाहं मन्दभाग्या महाभाग जीवितव्यसनिनी निर्लज्जा निर्घृणा'[7]

का०—'साहमेवंविधा पापकारिणी निर्लक्षणा निर्लज्जा क्रूरा च निःस्नेहा च नृशंसा च गर्हणीया निष्प्रयोजनोत्पन्ना निष्फलजीविता निर्नाथा निरवलम्बना निःसुखा च।'[8]

का० उ०—'कुमुदकुवलयकल्हारकमलाकरविलसितानि'[9]

का०—'उत्फुल्लकुमुदकुवलयकल्हारम्'[10]

का० उ०—'दुर्निवारवृत्तेर्मदनहतकस्य दोषैर्भवितव्यतया वानर्थस्य नात्यार्क्षादिवानुबन्धम्'[11]

का०—'दुर्लङ्घ्यशासनतया मनोभुवः···तथा भवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुनः'[12]

का०उ०—'अनाथीकृताः प्रजाः सहास्माभिर्भग्नाः पन्थानो गुणानाम्··· कस्य वदनमीक्षतां लक्ष्मीः···दूरं गतानि प्रियालपितानि···· कमुपयान्तु संप्रति प्रजाः'[13]

हर्ष०—'लोकस्य भग्नाः पन्थानो मनोरथानाम्····प्रलीना प्रियालापिता···· प्रपद्यतां प्रव्रज्यां प्रजापालता···समाश्रयतु राज्यश्रीराश्रमपदम्।'[14]

का० उ०—'यदर्थं कुलक्रमो न गणितो गुरवो नापेक्षिताः···जनवादान्न भीतं लज्जा परित्यक्ता'[15]

---

1. का० उ०, पृ० ३०६
2. का०, पृ० ४१२
3. का० उ०, पृ० ३०७
4. का०, पृ० ४६
5. का० उ०, पृ० ३०७
6. का०, पृ० १००
7. का० उ०, पृ० ३०७
8. का०, पृ० ५०१
9. का० उ०, पृ० ३०८,३०९
10. का०, पृ० ६७
11. का० उ०, पृ० ३०६
12. का०, पृ० ४२७-४१८
13. का० उ०, पृ० ३१२-३१३
14. हर्ष०, पृ० २५३
15. का० उ०, पृ० ३१५

का०—'यदि तावदितरकन्यकेव विहाय लज्जाम्'''अचिन्तयित्वा जनापवादम्'''अवगणय्य कुलम्'''एवं गुरुजनातिक्रमादधर्म्मो महान्'[1] तथा 'त्वत्प्रेम्णा चास्मिन् वस्तुनि मया कुमारिकाजनविरुद्धं स्वातन्त्र्यमालम्ब्याङ्गीकृतमयशः, समवधीरितो विनयः, गुरुवचनमतिक्रान्तम्, न गणितो लोकापवादः, वनिताजनस्य सहजमाभरणमुत्सृष्टा लज्जा'[2]

का० उ०—'देहि मे प्रतिवचनम्'[3]

का०—'देहि मे प्रतिवचनम्'[4]

का० उ०—किमप्यचिन्तितमनुत्प्रेक्षितमशिक्षितमनभ्यस्तमनुचितमपूर्वम्'[5]

का०—'तान्यचिन्तितान्यशिक्षितान्यनुपदिष्टान्यदृष्टपूर्वाणि'[6]

का० उ०—'विधिर्नाशपरः कोप्यत्रास्ते । यत्तस्मै रोचते तत्करोति ।'[7]

का०—'प्रभवति हि भगवान् विधिः, बलवती च नियतिः'[8]

यहाँ संक्षिप्तरूप में बाण का प्रभाव व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। भूषण ने पद-पद पर बाण का अनुकरण किया है। कादम्बरी के उत्तर भाग में बाण की पदावली, कल्पना, शब्द-विन्यास, क्रियाओं के प्रयोग आदि के दर्शन होते हैं। तारापीड के कथन[9] पर शुकनासोपदेश का प्रभाव पूर्णतः प्रतिबिम्बित हो रहा है।

---

१ का०, पृ० ४७०
२ वही, पृ० ५१२
३ का० उ०, पृ० २२१
४ का०, पृ० ३८३
५ का० उ०, पृ० २२१-२२२
६ का०, पृ० ३९२
७ का० उ०, पृ० ३३७
८ का०, पृ० ५०९
९ का० उ०, पृ० २८९ २९०

सुबन्धु

सुबन्धु की वासवदत्ता और बाण के ग्रन्थों में पर्याप्त साम्य प्राप्त होता है। इस स्थिति में यह कहा जा सकता है कि या तो सुबन्धु ने बाण का अनुकरण किया है या बाण ने सुबन्धु का। बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में वासवदत्ता की प्रशंसा की है।[1] कुछ विद्वानों का कथन है कि यह सुबन्धुकृत वासवदत्ता है।[2] यह मत चिन्त्य है। वासवदत्ता और हर्षचरित के कुछ वाक्य प्राय: समान हैं। यदि यह कहा जाये कि बाण ने सुबन्धु के वाक्यों को प्रायः ज्यों-का-त्यों रख लिया है, तो उचित नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने स्वयं चोर कवि की निन्दा की है।[3] क्या वे ऐसे वाक्यों की रचना नहीं कर सकते थे? यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जाये, तो यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि बाण, सुबन्धु से बहुत अधिक प्रतिभाशाली हैं। वे अनेक सुन्दर वाक्यों की योजना करने में समर्थ हैं और नवीन कल्पनाओं के प्रयोग में दक्ष हैं। अत: यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि सुबन्धु ने बाण का अनुकरण किया है, न कि बाण ने सुबन्धु का। बाण वाल्मीकि और कालिदास से प्रभावित हैं। उन्होंने इन कवियों के वाक्यों को ज्यों-का-त्यों नहीं रखा है। उन्होंने वाल्मीकि और कालिदास के ग्रन्थों को पढ़ा था और उनके रहस्यों को समझा था। बाण की रचनाओं में इन कवियों की कल्पनाओं और योजनाओं का जो प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है, वह बाण का अपना बन गया है। वह बाण के वैशिष्ट्य से समलङ्कृत है।

रस का जो कमनीय परिपोषण बाण के ग्रन्थों में मिलता है, वह वासवदत्ता में नहीं प्राप्त होता। भाषा की दृष्टि से भी बाण, सुबन्धु से आगे हैं। कल्पना, अलङ्कारविच्छित्ति, घटनाओं के संनिवेश आदि के क्षेत्र में भी बाण, सुबन्धु से

---

१. कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया
   शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥ हर्ष०, पृ० ८

२. Bana Bhatta : His life & literature, पृ० १५

३. अन्यवर्णपरावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः।

बहुत उत्कृष्ट हैं। ऐसी स्थिति में सुबन्धु, बाण के आदर्श नहीं बन सकते। उन्होंने जिस वासवदत्ता का उल्लेख किया है, वह सुबन्धुकृत वासवदत्ता नहीं है, अपितु महाभाष्यकार पतञ्जलि के द्वारा निर्दिष्ट वासवदत्ता है। बाण, सुबन्धु के आदर्श रहे होंगे। सुबन्धु ने बाण की कल्पनाओं, उद्भावनाओं, योजनाओं आदि का पद-पद पर अनुकरण किया है। श्री गजेन्द्रगदकर, कृष्णमाचार्य आदि बाण को सुबन्धु से प्राचीन मानते हैं।[१] यह मत अधिक औचित्यपूर्ण और तर्कसंयुत है।

भाषा तथा शैली की दृष्टि से तो सुबन्धु, बाणभट्ट से प्रभावित हैं ही, भावों के क्षेत्र में भी वे अत्यधिक प्रभावित हैं। सुबन्धु 'वक्रेणेवेन्द्रायुधेन'[२] में आये हुये 'इन्द्रायुध' पद से चन्द्रापीड के इन्द्रायुध नामक घोड़े का ही स्मरण करते हैं।

वासवदत्ता में 'मनोजव'[३] नामक घोड़े की कल्पना भी इन्द्रायुध के वर्णन के आधार पर की गयी है।

कादम्बरी की योजना के आधार पर वासवदत्ता में शुक तथा सारिका की योजना की गयी है; सारिका शुक से कहती है—

'कितव! शारिकान्तरमन्विष्य समागतोऽसि। कथमन्यथा रात्रिरियती तव' इति।[४]

कादम्बरी में शारिका ने शुक को तमालिका से कुछ कहते देखा। इससे वह क्रुद्ध हो गयी। कादम्बरी में इसका सुन्दर वर्णन हुआ है।[५]

वासवदत्ता में किये गये वसन्त-वर्णन[६] पर कादम्बरी के वसन्त-वर्णन[७] का प्रभाव है।

बाण जिस प्रकार यत्र, यस्मिन् आदि से वाक्यों का प्रारम्भ करते हैं, उसी प्रकार सुबन्धु ने भी वाक्यों का प्रारम्भ किया है।

'भास्वताऽलङ्कारेण, श्वेतरोचिषा स्मितेन, लोहितेनाधरेण, सौम्येन दर्शनेन, गुरुणा नितम्बबिम्बेन, सितेन हारेण, शनैश्चरेण पादेन, तमसा केशपाशेन, विकचेन लोचनोत्पलेन, ग्रहमयीमिव'[८] की वाक्य-योजना पर बाण के 'अरुणपादपल्लवेन, सुगतमन्थरोरुणा, वज्रायुधनिष्ठुरप्रकोष्ठेन,

---

१. Bana Bhatta : His life & literature पृ० १५
२. वा०, पृ० २१३
३. वही, पृ० २१२,२१३
४. वही, पृ० ८५
५ का० पृ० ५२९ ६०
६. वा०, पृ० ११०-११२
७. का०, पृ० ४१२-४१४
८. वा०, पृ० ४८-४९

वृषस्कन्धेन, भास्वद्बिम्बाधरेण, प्रसन्नावलोकितेन, चन्द्रमुखेन, कृष्णकेशेन, वपुषा सर्वदेवतावतारमिवैकत्र दर्शयन्तन्'[१] वाक्यविन्यास का स्पष्ट प्रभाव है।

बाण के 'अहो ! विधातुरस्थाने रूपनिष्पादनप्रयत्नः ;...मन्ये च मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयादस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य ।'[२] का प्रभाव वासवदत्ता के अधोलिखित वर्णन पर दृष्टिगत होता है—

'अहो प्रजापते रूपनिर्माणकौशलम् । मन्ये, स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दर्शनोत्सुकमनसा वेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणूनादाय विरचितोऽयमिति; अन्यथा कथमिवास्य कान्तिविशेष ईदृशो भवति ।'[३]

वासवदत्ता में दो स्थलों पर बाण के वाक्य प्राप्त होते हैं। उनमें कहीं कहीं थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया गया है।

प्रथम वर्णन है—

'प्रविकसितकेसरकुसुमकेसररजोविसरधूसरितनरिसरेण, परागपुञ्जपिञ्जरसिन्दुवारमञ्जरीरज्यमानमधुकरमञ्जुशिञ्जितजनितजनमुदा ... ...मदजलसेचकितगण्डकाषमुचुकुन्दकाण्डकथ्यमाननिःशङ्ककरिकरटविकटकण्डूतिना, कतिपयदिवसप्रसूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटजकोटरेण, चटकसंचार्यमाणचटुलवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटुना, सहचरीसहचरणचञ्चुरचकोरचञ्चुना, शैलेयसुगन्धितशिलातलसुखशायितशशशिशुराशिना, शेफालिकाशिफाविवरविस्रब्धविवर्तमानगोधेरराशिना, निरातङ्करङ्कुनिकरेण, निराकुलनकुलकुलकेलिना, कलकोकिलकुलकवलितसहकारकलिकोद्गमेन, सहकारारामरोमन्थायमानचमरीयूथेन, श्रवणहारिसनीडगिरिनितम्बनिर्झरनिनादश्रवणनिद्रानन्दमन्दायमानकरिकुलकर्णतालदुन्दुभिध्वनिना, समासन्नकिन्नरीगीतश्रवणरममाणरुरुविसरेण, गुञ्जाकुञ्जपुञ्जितजाहकजातेन, दंशदशनकुपितकपिपोतपेटकनखकोटिपाटितपाटलीपुटकीटसकटेन...'[४]

उपर्युक्त वर्णन बाण के अधोलिखित वर्णन का यत्र-तत्र परिवर्तित रूप है—

परागपिञ्ज

कुन्दस्कन्धकाण्डकथ्यमाननिःशङ्ककरिकरटकण्डूतयः… कतिपयदिवसप्रसूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटचकोटराः चटकासञ्चार्यमाणपटुरववाचाटचारुचाटकैरक्रियमाणचाटवः सहचरीसहचरणाञ्चञ्चुरचकोरचुञ्चवः…शैलेयसुकुमारशिलातलसुखशयितशशशिशवः शेफालिकाः शिफाविवरविस्रब्धवर्ममानगोधेरकराशयः निरातङ्करङ्कवः निराकुलनकुलकेलयः कलकोकिलकुलकवलकलकलाकलितकलिकोद्गमाः सहकारारामरोमन्थायमानचमूरूयूथाः…श्रवणहारिसनीडगिरिनितम्बनिर्झरनिनादनिद्रानन्दायमानकरिकुलकर्णतालदुन्दुभयः समासन्नकिन्नरगीतरवरममाणरुरवः…गुञ्जागुञ्जगुञ्जज्जाहकाः…दशनकुपितकपिपोतपेटकपाटितपाटलकीटपुटकाः…।'[1]

वासवदत्ता का द्वितीय वर्णन है—

'गुरुदारहरणं द्विजराजोऽकरोत्। पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया विननाश। नहुषः परकलत्रदोहदी भुजङ्गतामयासीत्। ययातिर्विहितब्राह्मणीपाणिग्रहणः पपात। सुद्युम्नः स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति जन्तुवधनिर्घृणता। पुरुकुत्सः कुत्सित एवाभवत्। कुवलयाश्वोऽश्वतरकन्यामपि जगाम। नृगः कृकलासतामगमत्। नलः कलिनाऽभिभूतः। संवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात्। दशरथोऽभीष्टरामोन्मादेन मृत्युमवाप। कार्तवीर्यो गोब्राह्मणपीडया पञ्चत्वमयासीत्। शन्तनुरतिव्यसनाद् विललाप। युधिष्ठिरः समरशिरसि सत्यमुत्ससर्ज। तदित्थं नास्त्येव जगत्यकलङ्कः कोऽपि।'[2]

यहाँ सुबन्धु ने बाण के अधोलिखित वर्णन को प्रायः ज्यों-का-त्यों रख लिया है—

'तात! बाण! द्विजानां राजा गुरुदारग्रहणमकार्षीत्। पुरूरवा ब्राह्मणद्रविणतृष्णया दयितेनायुषा व्ययुज्यत। नहुषः परकलत्राभिलाषी महाभुजङ्ग एवाभवत्। ययातिः आहितब्राह्मणीपाणिग्रहणः पपात। सुद्युम्नः स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति जन्तुवधनिर्घृणता।…पुरुकुत्सः कुत्सितं कर्म तपस्यन्नपि मेखलकन्यकायामकरोत्। कुवलयाश्वः भुजङ्गलोकपरिग्रहाद् अश्वतरकन्यकामपि न परिजहौ।…नृगस्य कृकलासभावेऽपि वर्णसङ्करः समदृश्यत।…नलम् अवश्याक्षहृदयं कलिः अभिभूतवान्। संवरणोऽपि मित्रदुहितरि विक्लवताम् अगात्। दशरथः अभीष्टरामोन्मादेन मृत्युमुपजगाम। कार्तवीर्योऽपि

---

१ हर्ष० पृ० १०४ इत्यादि

२ वा०, पृ० २३९ २४२

गोब्राह्मणातिपीडनेन निधनमयासीत्।...शन्तनुः अतिव्यसनादेकाकी विमुक्तो महावाहिन्या विपिने विललाप।...युधिष्ठिरो गुरुभयविषण्ण-हृदयः समरशिरसि सत्यम् उत्सृष्टवान्। इत्थं नास्ति राजत्वम् अपगतकलङ्कम्....।'[1]

वासवदत्ता से तथा बाण के ग्रन्थों से समान भाव वाले उद्धरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

वा०—'अगस्त्य इव दक्षिणाशाप्रसाधकः'[2]
का०—'दक्षिणाशावधूमुखविशेषकस्य'[3]
वा०—'हर इव महासेनानुगतः'[4]
का०—'पशुपतिरिव महासेनानुयातः'[5]
वा०—'हर इव निर्दलितमारश्च'[6]
का०—'हर इव जितमन्मथः'[7]
वा०—'जरासन्ध इव घटितसन्धिविग्रहः'[8]
का०—'जरासन्ध इव घटितसन्धिविग्रहः'[9]
वा०—'दशरथ इव सुमित्रोपेतः'[10]
का०—'दशरथ इव सुमित्रोपेतः'[11]
वा०—'तार्क्ष्य इव विनतानन्दकरः'[12]
का०—'वैनतेय इव विनतानन्दजननः'[13]

वा०—'यस्य च प्रतापानलदग्धदयितानां रिपुसुन्दरीणां करतलताडनभी-तैरिव मुक्ताहारैः पयोधरपरिसरो मुक्तः।'[14]

का०—'यस्य च हृदयस्थितानपि पतीन् दिधक्षुरिव प्रतापानलो वियोगिनी-नामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाहो दिवानिशं जज्वाल।'[15]

---

१. हर्ष०, पृ० १२७-१३१
२. वा०, पृ० ९
३. का०, पृ० ६३
४. वा०, पृ० ९
५. का०, पृ० १६७
६. वा०, पृ० ९
७. का०, पृ० १२
८. वा० पृ० २०
९. का०, पृ० १७५
१०. वा०, पृ० २०
११. का०, पृ० १६
१२. वा०, पृ० २३
१३. का०, पृ० १४
१४. वा०, पृ० २९
१५. का०, पृ० १६

वा०—'रणितनूपुरमणीनां रमणीनाम्'[१]
का०—'रणितमणीनां मणिनूपुराणाम्'[२]
वा०—'मेखलादाम्ना परिकलितजघनस्थलाम्'[३]
का०—'मेखलादाम्ना परिगतजघनस्थलाम्'[४]
वा०—'दुग्धोदधिसहस्राणीवोद्वमता'[५]
का०—'अतिधवलप्रभापरिगतदेहतया'''दुग्धसलिलमग्नामिव'[६]
वा०—'विजयपताकामिव मकरध्वजस्य'''संकेतभूमिमिव लाव
विहारस्थलीमिव सौन्दर्यस्य''' '''उत्पत्तिस्थानमिव कान्तेः
त्रिभुवनविलोभनसृष्टिमिव प्रजापतेः'[७]

हर्ष०—'आज्ञासिद्धिरिव मकरध्वजस्य'''दैवसम्पत्तिरिव लाव
''''''वरप्राप्तिरिव कान्तेः, सर्गसमाप्तिरिव सौन्दर्यस्य
सौभाग्यपरमाणुसृष्टिरिव प्रजापतेः'[८]

वा०—'विष्णुरिव चक्रधरः'[९]
का०—'चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलाञ्छनः'[१०]
वा०—'पच्यन्त इव मेऽङ्गानि'[११]
का०—'पच्यन्त इव मेऽङ्गानि'[१२]
वा०—'पिण्डालक्तकरागपल्लवितपादपङ्क्ति'[१३]
का०—'अतिबहलपिण्डालक्तकरसरागपल्लवितपादपङ्कजाम्'[१४]
वा०—'क्रुद्धयेव दर्शितमुखभङ्ग्या, मत्तयेव स्खलद्गत्या'[१५]
का०—'क्रुद्धयेव कृतभ्रूभङ्गया मत्तयेवाकुलितगमनया'[१६]
वा०—'विराटलक्ष्म्येव आनन्दितकीचकशतया'[१७]
का०—'क्वचिद् विराटनगरीव कीचकशतावृता'[१८]

---

१. वा०, पृ० ३८
२. का०, पृ० ४२
३. वा०, पृ० ४०-४१
४. का०, पृ० ३३
५. वा०, पृ० ४५
६. का०, पृ० ३८८
७. वा०, पृ० ५०
८. हर्ष०, पृ० १७८
९. वा०, पृ० ५५
१०. का०, पृ० ११-१२
११. वा०, पृ० ६३
१२. का०, पृ० ४६२
१३. वा०, पृ० ७०
१४. का०, पृ० ३३
१५. वा०, पृ० ७७
१६. का०, पृ० १२८
१७. वा०, पृ० ८३
१८. का० पृ० ६१

वा०—'स्वयमपि तदुपभुक्तशेषमकरोदशनम् ।'[१]
का०—'आत्मना च मदुपभुक्तसेषम् अकरोदशनम्'[२]
वा०—'शिखरावलग्नं तारागणमिव कुसुमनिकरमुद्वहद्भिः'[३]
का०—'अतिविकचधवलकुसुमनिकरमत्युच्चतया तारागणमिव शिखर-
देशलग्नमुद्वहद्भिः'[४]
वा०—'चतुरम्बुधिमेखलां शासति वसुमतीम्'[५]
का०—'चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्त्ता'[६]
वा०—'शशिनः कन्यातुलारोहणम्'[७]
का०—'ग्रहाणां तुलारोहणम्'[८]
वा०—'दानच्छेदः करिकपोलेषु'[९]
का०—'करिणां दानविच्छित्तिः'[१०]
वा०—'कर्तनमलकेषु'[११]
का०—'केशनखानामायतिभङ्गः'[१२]
वा०—'सर्वान्तःपुरप्रधानभूता'[१३]
का०—'सकलान्तःपुरप्रधानभूता'[१४]

---

१. वा०, पृ० ८४
२. का०, पृ० ७७
३. वा०, पृ० ९६-९७
४. का०, पृ० ५५-५६
५. वा०, पृ० १०३
६. का०, पृ० ११
७. वा०, पृ० १०३
८. का०, पृ० १७३
९. वा०, पृ० १०४
१०. का०, पृ० १७४
११. वा०, पृ० १०७
१२. का०, पृ० १७३
१३. वा०, पृ० १०८
१४. का०, पृ० १८६

दण्डी

दण्डी ने अवन्तिसुन्दरीकथा की रचना की है। अवन्तिसुन्दरीकथा पर बाण कृत कादम्बरी का प्रभाव प्राप्त होता है। दण्डी ने प्रारम्भ में बाण की प्रशंसा की है:—

'भिन्नस्तीक्ष्णमुखेनापि चित्रं बाणेन निर्व्यथः।
व्याहारेषु जहौलीलां न मयूरः............॥'

जिस प्रकार बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में प्राचीन कवियों की प्रशस्ति उपस्थित की है, उसी प्रकार दण्डी ने भी अवन्तिसुन्दरीकथा के प्रारम्भ में कवियो की प्रशंसा की है। बाण की ही भाँति दण्डी ने भी वर्णनों का निर्वाह किया है। सुदीर्घ वाक्यों तथा बड़े बड़े समासों का प्रयोग किया गया है। काञ्चीपुर नामक राजधानी का वर्णन उज्जयिनी की भाँति हुआ है। दण्डी अनेकस्थलों पर यया च, यस्यां च, या च, यस्याश्च के प्रयोग से वर्णन आगे बढ़ाते हैं। यह बाण की प्रक्रिया है। अवन्तिसुन्दरीकथा में राजलक्ष्मी की निन्दा उसी प्रकार की गयी है, जिस प्रकार कादम्बरी में। कादम्बरी में जिस प्रकार सेना के प्रयाण का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार अवन्तिसुन्दरीकथा में भी। दोनों में धूलिसमूह की समान रूप से उत्प्रेक्षा की गयी है। सूतिकागृह के वर्णन का आधार भी कादम्बरी ही है। इस प्रकार अनेक वर्णन कादम्बरी से प्रभावित हैं। दोनों ग्रन्थों में साम्य प्रकट करने के लिए कुछ उद्धरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

अवन्ति०—'युवतिजनकुचक्षोभजनितवीचीवेगया वेत्रवत्या'[1]
का०—'यौवनमदमत्तमालवीकुचकलशक्षुभितसलिलया'[2]
अवन्ति०—'कैलासशिखरमालाविडम्बिना प्राकारवलयेन'[3]
का०—'कैलासगिरिणेव सुधासितेन प्राकारमण्डलेन परिगता'[4]
अवन्ति०—'महापथैरुपशोभिता'[5]

---

१. अवन्ति०, पृ० ४
२. का०, पृ० १५४
३. अवन्ति०, पृ० ४
४. का०, पृ० १२१
५. अवन्ति०, पृ० ४

का०—'महाश्विपरिणपथैरुपशोभिता'[1]

अवन्ति०—'तस्याः पतिरपर इव पाकशासनः'[2]

का०—'पाकशासन इवापरः'[3]

अवन्ति०—'इन्दुमण्डलादिवोत्कीर्ण क्षिप्तम्'[4]

का०—'चन्द्रमण्डलादिवोत्कीर्णम्'[5]

अवन्ति०—'अमलमणिभूमिगर्भसंक्रान्तप्रतिबिम्बतया'[6]

का०—'अमलमणिकुट्टिमसंक्रान्तसकलदेहप्रतिबिम्बतया'[7]

अवन्ति०—'यस्य च सततमत्तक्रतुङ्गकुम्भकूटपाटनेषु सुभटमण्डलपृथुलोरः-कवाटभित्तिभेदनेषु'[8]

का०—'मदकलकरिकुम्भपीठपाटनम्'''सुभटोरःकपाटविघटित'[9]

अवन्ति०—'पुनर्जातमिव मीनकेतुं मेनिरे प्रजाः'[10]

का०—'समासादितविग्रहमनङ्गमिवाकृतीर्णम्'[11]

अवन्ति—'नोपलालितं गणयति, नानुवृत्तिमवबुध्यते, न पक्षपातं पश्यति, न बहुमानं मन्यते ।'[12]

का०—'न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते, न कुल-क्रममनुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्ण-यति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचार-यति, नाचारं पालयति, न सत्यमवबुध्यते ।'[13]

अवन्तिसुन्दरीकथा पर हर्षचरित का भी प्रभाव प्राप्त होता है-

अवन्ति०—'शैलसुतेव विश्वेश्वरस्य, लक्ष्मीरिव पुष्करेक्षणस्य, बुद्धि-रिव धनाधिपस्य'''रोहिणीव बुधभवनस्यारुन्धतीव शक्ति-गुरोरसुम्योऽपि वल्लभा देवी वसुमती नाम ।'[14]

---

१. का०, पृ० १५२
२. अवन्ति०, पृ० ७
३. का०, पृ० ११
४. अवन्ति०, पृ० १९
५. का०, पृ० ३९२
६. अवन्ति०, पृ० १९
७. का०, पृ० २८
८. अवन्ति०, पृ० २१
९. का०, पृ० १६
१०. अवन्ति०, पृ० २१
११. का०, पृ० २५८
१२. अवन्ति०, पृ० ४१
१३. का०, पृ० ३१८-३१९
१४. अवन्ति०, पृ० २४

हर्ष०—सती पार्वतीव शङ्करस्य, गृहीतहृदया लक्ष्मीरिव लोकगुरोः, स्फुरत्तरलतारका रोहिणीव कलावतः, सर्वजनजननी बुद्धिरिव प्रजापतेः.....अरुन्धतीव महामुनेः'[१]

अवन्ति०—'अगमदुत्तमाङ्गेन गाम्'[२]

हर्ष०—'पस्पर्श च हृदयेन भियं भृशम् उत्तमाङ्गेन च गाम्।'[३]

---

१. हर्ष०, पृ० १७६–१७७

२. अवन्ति०, पृ० १२५

३. हर्ष०, पृ० २३४

अभिनन्द

अभिनन्द ने कादम्बरीकथासार की रचना की है। कादम्बरीकथासार में बाणभट्टकृत कादम्बरी की कथा संक्षिप्तरूप में पद्यबद्ध कर दी गयी है। इसमें आठ सर्ग हैं। अभिनन्द का समय नवम शताब्दी ई० है।[1] वे जयन्त के पुत्र थे।[2]

कादम्बरीकथासार में अनेक स्थलों पर कादम्बरी की पदावली तथा भाव गृहीत हुये हैं :—

कादम्बरीकथासार—'तस्यां निजभुजोद्योगविजितारातिमण्डलः।
आखण्डल इव श्रीमान् राजा शूद्रक इत्यभूत् ॥'[3]

का०—'पाकशासन इवापरः'[4]

तथा

'चापकोटिसमुत्सारितसकलारातिकुलाचलः'[5]

कादम्बरीकथासार—'को दोषः प्रविशत्विति'[6]

का०—'को दोषः प्रवेश्यताम्'[7]

कादम्बरीकथासार—'उत्क्षिप्य दक्षिणं पादं जयशब्दमुदीर्य सः।
प्रयुक्तवेदमन्त्राशीरिमामार्यामथापठत् ॥'[8]

का०—'समुन्नमय्य दक्षिणं चरणमतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्य्यामिमां पपाठ'[9]

कादम्बरीकथासार—'ततस्तातोरसः किञ्चिदुन्नमय्य शिरोधराम्।
कुतूहलवशाच्चक्षुर्दिक्षु निक्षिप्तवानहम् ॥'[10]

---

1. S. N. Dasgupta तथा S. K. De : A History of Sanskrit Literature, पृ० ३२४

२. 'जयन्तनाम्नः सुधियः स धुसाहित्यतत्त्ववित्।
सूनुः समुद्भूतस्मादभिनन्द इति श्रुतः ॥'
कादम्बरीकथासार, १।१२

३. वही, १।१६

४. का०, पृ० ११

५. वही, पृ० १४

६. कादम्बरीकथासार, १।२४

७. का०, पृ० २५

८. कादम्बरीकथासार, १।३६

९. का०, पृ० ३८

१०. कादम्बरीकथासार, १।२७

का०—'उपजातकुतूहलः पितुरुत्सङ्गादीषदिव निष्क्रम्य कोटरस्थ एव शिरोधरां प्रसार्य्य सन्त्रासतरलतारकः शैशवात् किमिदमिति सञ्जातदिदृक्षः तामेव दिशं चक्षुः प्राहिणवम् ।'[1]

कादम्बरीकथासार—तस्यां भरतमान्धातृभगीरथपृथूपमः ।
तारापीड इति श्रीमान् बभूव पृथिवीपतिः ।'[2]

का०—'तस्याञ्चैवंविधायां नगर्य्यां नलनहुषययातिधुन्धुमारभरत-भगीरथदशरथप्रतिमः'[3]

कादम्बरीकथासार—'शोभा हि कृतकृत्यस्य राज्ञो भोगविभूतयः ।
असमाप्तजिगीषस्य ता एव तु विडम्बनाः ॥'[4]

का०—'प्रमुदितप्रजस्य हि परिसमाप्तसकलमहीप्रयोजनस्य नरपतेर्विषयसम्भोगलीला भूषणम्, इतरस्य तु विडम्बना ।'[5]

कादम्बरीकथासार—'योऽसि सोऽसि नमस्तुभ्यमारोहातिक्रमस्त्वया ।
मर्षणीयोऽयमस्माकमारुरोहेति तं वदन् ॥'[6]

का०—'अर्वन् ! योऽसि सोऽसि, नमोऽस्तु ते, सर्वत्र मर्षणीयोऽयमारोहणातिक्रमोऽस्माकम्'[7]

कादम्बरीकथासार—'अहो किमपि मे मौर्ख्यमस्थानाभिनिवेशिनः ।
यदात्मा बालकेनेव व्यर्थमायासितो मया ॥'[8]

का०—'किमिति निरर्थकमयमात्मा मया शिशुनेवायासितः ।'[9]

कादम्बरीकथासार की भाषा सुस्पष्ट है । कादम्बरी की कथा को संक्षिप्त और कमनीय रीति से उपस्थित करने का प्रयास स्तुत्य है ।

---

१. का०, पृ० ८७
२. कादम्बरीकथासार, २।९
३. का०, पृ० १६५
४. कादम्बरीकथासार, २।१०
५. का०, पृ० १८३
६. कादम्बरीकथासार, २।१०३
७ का०, पृ० २४४
८. कादम्बरीकथासार, ३।७१
९. का०, पृ० २६३

त्रिविक्रमभट्ट

नलचम्पू के रचयिता त्रिविक्रमभट्ट का समय १० वीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध है, क्योंकि राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय के एक अभिलेख (९१५ ई०) के लेखक त्रिविक्रमभट्ट हैं।[1] उन्होंने नलचम्पू और मदालसाचम्पू की रचना की है। बाण;की रचनाओं का नलचम्पू पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

त्रिविक्रमभट्ट ने नलचम्पू के प्रारम्भ में बाणभट्ट की प्रशंसा की है—

> शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
> धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः॥'[2]

नलचम्पू में एक स्थान पर कादम्बरी की प्रशंसा की गयी है—'कादम्बरी-गद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहयः केदाराः'[3]। भाषा, शैली आदि की दृष्टि से विचार किया जाये, तो यह कहा जा सकता है कि नलचम्पू में बाण का पद-पद पर अनुकरण प्राप्त होता है। त्रिविक्रमभट्ट ने बाण की वाक्य-रचना का अनुकरण किया है। अलङ्कारों के प्रयोग तथा वर्णन-निर्वाह की दृष्टि से भी प्रभाव परिलक्षित होता है। नल के प्रति सालङ्कायन का उपदेश,[4] चन्द्रापीड के प्रति शुकनास के उपदेश[5] से प्रभावित है। नल के राज्याभिषेक का वर्णन[6] भी चन्द्रापीड के राज्याभिषेक के वर्णन[7] के आधार पर किया गया है। नलचम्पू का शरद्वर्णन[8] हर्षचरित के शरद्वर्णन[9] की अनुकृति पर किया गया है।

'प्रबुद्धबुद्धिर्बौद्धे, सविशेषशेमुषीको वैशेषिके, विख्यातः सांख्ये, रञ्जितलोको लोकायते, प्राप्तप्रभः प्राभाकरे, प्रतिच्छन्दकश्छन्दसि, अनल्पविकल्पः कल्पज्ञाने, शिक्षाक्षमः शिक्षायाम्, अकृतापशब्दः शब्द-शास्त्रे, अभियुक्तो निरुक्ते, सज्ज्ञो ज्योतिषि, तत्त्ववेदी वेदान्ते, प्रसिद्धः

---

१. कीथ-संस्कृतसाहित्य का इतिहास, पृ० ३९३
२. नल०, पृ० ५
३. वही, पृ० ११
४. वही, पृ० १०२–११२
५. का०, पृ० ३११–३३५
६. नल०, पृ० ११५
७. का०, पृ० ३३६
८. नल०, पृ० ३९–४०
९. हर्ष०, पृ० १२२

सिद्धान्तेषु, स्वतन्त्रस्तन्त्रीवाद्येषु, पटुः पटहे, अप्रतिमल्लो झल्लरीषु, निपुणः पणवेषु, प्रवीणो वेणुषु, चित्रकृच्चित्रविद्यायाम्, उद्दाम कामतन्त्रे, कुशलः शालिहोत्रे, श्रेष्ठः काष्ठकर्मणि, सावलेपो लेप्ये, पण्डितः कोदण्डे, शौण्डः शारिषु, गुणवान् गणिते, बहुलो बाहुयुद्धेषु, चतुरश्चतुरङ्गद्यूतक्रीडायाम्, उपदेशको देशभाषासु, अलौकिको लोकज्ञाने।'[१] का आधार चन्द्रापीड के विविध विषयो के ज्ञान का वर्णन[२] है।

'मा गा इत्यशकुनम्, गच्छेति निष्ठुरता, यदिष्टं तद्विधीयतामित्यौदासीन्यम्, आदर्शनात् प्रियोऽसीति क्रियाशून्यालापः, कस्त्वमेवंविधो दिव्यवाक्पक्षिरत्नमित्यप्रस्तुतप्रश्नः, केनार्थोत्यप्रक्रान्तम्, किं ते प्रियमाचरामीत्युपचारवचनम्, कृतोऽपकारोऽसीति प्रत्यक्षस्तुतिः।'[३] की रचना का आधार 'अतिप्रियोऽसीति पौनरुक्त्यम्, तवाहं प्रियात्मेति जडप्रश्नः, त्वयि गरीयाननुराग इति वेश्यालापः, त्वया विना न जीवामीत्यनुभवविरोधः, परिभवति मामनङ्ग इत्यात्मदोषोपालम्भः, मनोभवेनाहं भवते दत्तेत्युपसर्पणोपायः, बलाद् धृतोऽसि मयेति बन्धकीधार्ष्ट्यम्, अवश्यमागन्तव्यमिति सौभाग्यगर्वः, स्वयमागच्छामीति स्त्रीचापलम्, अनन्यरक्तोऽयं परिजन इति स्वभक्तिनिवेदनलाघवम्।'[४] वाक्य-रचना है।

त्रिविक्रमभट्ट ने बाण की अनेक कल्पनाओं, भावनाओं और वाक्य-योजनाओं का नलचम्पू में उपयोग किया है। भावसाम्य के निरूपण के लिये नलचम्पू तथा बाण के ग्रन्थों से कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे है—

नल०—'किं कवेस्तेन काव्येन'[५]

हर्ष०—'किं कवेस्तस्य काव्येन'[६]

नल०—'श्रूयन्ते च यत्र श्रवणोचिताश्चन्दनपल्लवा इव'[७]

का०—'विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मयं दिने दिने शिष्यगणा नवा नवाः।
उपस्सु लग्नाः श्रवणेऽधिकां श्रियं प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव।'[८]

---

१. नल, पृ० ९६
२. का०, पृ० २२९—२३०
३. नल०, पृ० १२२
४. का०, पृ० ६६७—६६८
५. नल०, पृ० २
६. हर्ष०, पृ० ६
७. नल०, पृ० ६
८. का०, पृ० ७

नल०—'स्वर्गगमनसोपानवीथीयमानरिङ्गत्तरङ्गया'[1]
का०—'आबध्यमानस्वर्गमार्गगमनसोपानसेतुमिवोपलक्ष्यमाणाम्'[2]
नल०—'आश्रयः श्रेयसाम्'[3]
का०—'आयतनं मङ्गलानाम्'[4]
नल०—'धाम धर्मस्य'[5]
का०—'धाता धर्म्मस्य'[6]

तथा

हर्ष०—'धाम धर्मस्य'[7]
नल०—'आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्'[8]

तथा

'सिन्धुः साधुतायाः'[9]
का०—'उत्पत्तिः साधुतायाः'[10]
नल०—'यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः'[11]
हर्ष०—'गौर्यो विभवरताश्च'[12]
नल०—'मित्रं च मन्त्री च सुहृत्प्रियश्च विद्यावयःशीलगुणैः समानः ।
बभूव भूपस्य स तस्य विप्रो विश्वंभराभारसहः सहायः ॥'[13]
का०—'आशैशवादुपारूढनिर्भरप्रेमरसः, नीतिशास्त्रप्रयोगकुशलः, भुवनराज्यभारनौकर्णधारः.........शेषाहिरिव सकलमहीभारधारणक्षमः'[14]
नल०—'तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे'[15]

तथा

'तृणमिव स्त्रैणम्'[16]

---

१. नल०, पृ० ६
२. का०, पृ० ११८
३. नल०, पृ० ९
४ का०, पृ० १३७
५ नल०, पृ० ९
६ का०, पृ० १७५
७. हर्ष०, पृ० १५५
८ नल० पृ० ९
९. वही, पृ० ७२
१०. का०, पृ० १३७
११. नल०, पृ० १२
१२. हर्ष०, पृ० १४४
१३. नल०, पृ० २१
१४. का०, पृ० १७५
१५. नल०, पृ० २२
१६ वही पृ० ७४

का०—'तृणमिव लघुवृत्ति स्त्रैणमाकलयतः'[१]

नल०—'अब्जश्रीसुभगं युगं नयनयोर्मौलिर्महोष्णीषवान्—
नूर्णारोमसखं मुखं च शशिनः पूर्णस्य धत्ते श्रियम् ।
पद्मं पाणितले गले च सदृशं शङ्खस्य रेखात्रयं
तेजोऽप्यस्य यथा तथा सजलधेः कोऽप्येष भर्ता भुवः ॥'[२]

का०—'एतद्विकचपुण्डरीकधवलं कर्णान्तायतं मुहुर्मुहुरुन्मिषितैर्धवलयतीव वासभवनमरालपक्ष्म नेत्रयुगलम् । विजृम्भमाणकमलकोशपरिमलमनोहरमियमस्य सहजमाननामोदमाजिघ्रतीव दूरायता कनकलेखेव नासिका । रक्तोत्पलकलिकाकारमुद्वहतीव चास्याधररुचकम् । रक्तोत्पलकलिकालोहिततलौ भगवतो विष्टरश्रवस इव शङ्खचक्रचिह्नौ प्रशस्तलेखालाञ्छितौ करौ ।'[३]

नल०—'मूर्छितेनेव...स्तम्भितेनेव'[४]

का०—'स्तम्भितेव...मूर्च्छितेव'[५]

नल०—'अस्मिन्नपि देशे निःशेषजननयनकुमुदेन्दुना त्वया दृष्टेन, दृष्टं यद्द्रष्टव्यम् । अभूच्च मे श्लाघ्यं जन्म । जाते कृतार्थे चक्षुषी । संपन्नः सफलः परिभ्रमणप्रयासः ।'[६]

का०—'अहो निष्फलमपि मे तुरङ्गमुखमिथुनानुसरणम् एतदालोकयतः सरः सफलतामुपगतम् । अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः'[७]

नल०—'जलनिधिशयनशायिशार्ङ्गिनिद्राद्रुहि'[८]

हर्ष०—'दामोदरनिद्राद्रुहि'[९]

नल०—'कृतस्वस्तिशब्दो विस्पष्टवर्णविशेषं राजानमुपश्लोकयाञ्चकार'[१०]

का०—'अतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्य्यामिमां पपाठ'[११]

---

१. का०, पृ० २०
२. नल०, पृ० ३३
३. का०, पृ० २२१-२२२
४. नल०, पृ० ३६
५. का०, पृ० ४२३
६. नल०, पृ० ३६
७. का०, पृ० ३७५
८. नल०, पृ० ७०
९. हर्ष०, पृ० १२२
१०. नल०, पृ० ४७
११. का०, पृ० ३८

नल०—'आधारो धीरताया:'[१]

हर्ष०—'आधारं धृते:'[२]

नल०—'तरुभिरिव विविधशाखैर्विधृतजटावल्कलैश्च, पर्वतैरिव समेखलैः सरुद्राक्षाक्षमालैश्च, नक्षत्रैरिव समृगकृत्तिकाश्लेषैः सज्येष्ठापाढैश्च'[३]

का०—'विटप इव कोमलवल्कलावृतशरीरः, गिरिरिव समेखलः······ नक्षत्रराशिरिव चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः'[४]

नल०—'प्रपा कृपारसस्य क्षेत्रं क्षमाङ्कुराणाम्'[५]

का०—'एष प्रवाहः करुणारसस्य······आधारः क्षमाम्भसाम्'[६]

तथा

हर्ष०—'आकरं करुणायाः'[७]

नल०—'प्रासादः प्रसादस्य'[८]

हर्ष०—'प्रासादं प्रसादस्य'[९]

नल०—'इदं राज्यमियं लक्ष्मीरिमे दारा इमे गृहाः।
एते वयं विधेया वः कथ्यतां यदिहेप्सितम् ॥'[१०]

हर्ष०—'तस्मै राजा सान्तःपुरं सपरिजनं सकोपमात्मानं निवेदितवान्।'[११]

नल०—'यद्यावद्यादृशं येन कृतं कर्म शुभाशुभम्।
तत्तावत्तादृशं तस्य फलमीशः प्रयच्छति ॥'[१२]

का०—'जन्मान्तरकृतं हि कर्म्म फलमुपनयति पुरुषस्येहजन्मनि'[१३]

नल०—'अलंकारो भवद्विधानामेव राजते नास्माकम्।'[१४]

हर्ष०—'तात, क्व विभवाः, क्व वयं वनवर्धिताः। घनोष्मणा म्लायति लतेव मनुष्यता। खद्योतानामिवेयमेव अस्माकमपरोपतापिनी तेजस्विता। भवादृशा एव भाजनं विभूतेः इति।'[१५]

---

१. नल०, पृ० ५२
२. हर्ष०, पृ० १५५
३. नल०, पृ० ७१
४. का०, पृ० १११-११२
५. नल०, पृ० ७२
६. का०, पृ० १३६
७. हर्ष०, पृ० १५५
८. नल० पृ० ७२
९. हर्ष०, पृ० १५५
१०. नल०, पृ० ७४
११. हर्ष०, पृ० १५७
१२. नल०, पृ० ७६
१३. का०, पृ० १९१
१४. नल०, पृ० ७८
१५. हर्ष०. पृ० १५७—१५८

नल०—'स्वीकृतमस्वास्थ्येन'[1]

हर्ष०—'स्वीकृतमसाध्यत्वेन, त्रिवेयीकृतं व्याधिभिः'[2]

नल०—'तीक्ष्णता शस्त्रेषु'[3]

का०—'तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु'[4]

नल०—'परिधाप्य च मङ्गलाभरणवाससी सिंहासनमारोप्य पुत्रप्रेम्णा पुरः स्थित्वा कनकदण्डपाणिः क्षणं प्रातिहार्यमन्वतिष्ठत्।'[5]

का०—'तत्कालप्रतिपन्नवेत्रदण्डेन पित्रा स्वयं पुरःप्रारब्धसमुत्सारणः सभामण्डपमुपगम्य काञ्चनमयं शशीव मेरुशृङ्गं चन्द्रापीडः सिंहासनमारुरोह।'[6]

नल०—'सौभाग्यसीमानलः'[7]

हर्ष०—'सिद्धियोगमिव सौभाग्यस्य'[8]

नल—'तदेवंविधो निर्निमित्तबन्धुः किमस्यर्थ्यते।'[9]

हर्ष०—'निर्निमित्तबन्धुना च सन्दिष्टमेव कृष्णेन।'[10]

इस प्रकार नलचम्पू और बाण के ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्रिविक्रम, बाणभट्ट के अधमर्ण हैं।

---

१. नल०, पृ० ९०
२. हर्ष०, पृ० २३३
३. नल०, पृ. ९५
४. का०, पृ० १२४
५. नल०, पृ० ११५
६. का०, पृ० ३३८
७. नल०, पृ० १२०
८. हर्ष०, पृ० ३५-३६
९. नल०, पृ० १२२
१०. हर्ष० पृ० ८४

सोमदेव

सोमदेव ने अपने ग्रन्थ यशस्तिलकचम्पू में बाणभट्ट का अनुकरण किया है। सोमदेव १० वीं शताब्दी ई० के राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजदेव के समकालीन थे।[1] उनकी भाषा और शैली पर बाणभट्ट का प्रभाव प्राप्त होता है। सोमदेव ने बाण की कल्पनाओं और भावनाओं का अनुकरण किया है। जिस प्रकार बाण की रचनाओं में बड़े-बड़े समस्तपद और दीर्घ वाक्य प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार यशस्तिलकचम्पू में भी मिलते हैं। बाण की ही भाँति सोमदेव परिसंख्या अलङ्कार का प्रयोग करते हैं।[2]

सोमदेव ने बाण की अनेक वाक्य-योजनाओं का अनुकरण किया है।

कादम्बरी में तारापीड की विशेषताओं का वर्णन करते हुये बाण 'यः' से प्रसङ्ग का प्रारम्भ करते हैं और यस्मिन् से समाप्त करते हैं। इस प्रसङ्ग में यः, यम्, येन, यस्मै, यस्मात्, यस्य, यस्मिन् क्रमशः आये हैं।[3] सोमदेव इसका अनुकरण करते हैं।[4]

---

१ पाण्डेय तथा व्यास—संस्कृतसाहित्य की रूपरेखा, पृ० ४०४

२. यशस्तिलक०, पृ० २०२—२०३

३. का०, 'यस्सम.प्रसरमलिनवपुषा...' पृ० १६७

'यञ्च रतिप्रतापजनित....' पृ० १६८

येन चानेकरत्नांशुजाल....' पृ० १७०

'यस्मै च मन्दे....' पृ० १७०

'यस्माच्च अवर्जीकृतभुवनतल:....' पृ० १७१

'यस्य चानुरागोद्भुतमिपरिसलया....' पृ० १७१

'यस्मिंश्च राजनि ' पृ० १७२

४ यशस्तिलक० —

'यश्चञ्चु. सर्वत्र कान्तो यो स्व. क्षितिरक्षो' पृ० २१३

'यं प्रतापकम्पित ' पृ० २१४

'येन निःशेषविष्टप ' पृ० २१५

'यस्मै सच्चरित्रपात्रेन....' पृ० २१८

'यस्मादभ्युदय ....' पृ० २१९

'यस्य शरासभासावसरेषु....' पृ० २२०

'यस्मिन् दिग्विजययात्राकृतकुतूहले....' पृ० २२१

सोमदेव ने अपने वर्णनों को बाण की रचनाओं के आधार पर ढाला है वे प्रसङ्गों तथा कथा-पटलों की उपस्थापना में भी बाण का अनुकरण करते हैं सोमदेवकृत चरित्रचित्रण पर भी बाण का प्रभाव है।

यशस्तिलकचम्पू तथा बाण के ग्रन्थों के उद्धरण अधोऽङ्कित हैं—

यशस्तिलक०—'मत्तः काव्यमिदं जातं सतां हृदयमण्डनम्।'[1]

का०—'तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम्।'[2]

यशस्तिलक०—'आदाय सर्वसारं विधिना दर्शयितुमस्य लोकस्य।
अमरपुरीलक्ष्मीमिव मन्ये सृष्टं प्रयत्नेन॥'[3]

का०—'विजितामरलोकद्युतिरवन्तीषूज्जयिनी नाम नगरी।'[4]

यशस्तिलक०—'पराक्रमापहसितनृगनलनहुषभरतभगीरथभगदत्त'[5]

हर्ष०—'न्यक्कृतनृगनलनहुषययातिधुन्धुमाराम्बरीषदशरथदिलीपनाभा भरतभगीरथोऽमृतमयः स्वामी।'[6]

यशस्तिलक०—'समानशीलव्यसनचरित्रैर्नर्मसचिवपुत्रैः परिवृतः'[7]

का०—'स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः समानवयोविद्यालङ्कारैरनेक मूर्धाभिषिक्तपार्थिवकुलोद्गतैः'[8]

यशस्तिलक०—'करेणुभिः करीव कामिनीभिः परिवृतो जलक्रीडा सुखमन्वभूत्।'[9]

का०—'वारिमध्यप्रविष्टः करिणीभिरिव वनकरी परिवृतस्तत्क्षण रराज राजा।'[10]

---

1. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० ५
2. का०, पृ० ४
3. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० २२
4. का०, पृ० १६०
5. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० २५
6. हर्ष०, पृ० ८२
7. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० २६
8. का०, पृ० २०
9. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० ४०
10. का० पृ० ४०

यशस्तिलक०—'उदयाचलस्तपस्तपनस्य'[1]
का०—'उदयशैलो मित्रमण्डलस्य'[2]
यशस्तिलक०—'उत्पत्तिक्षेत्र सौजन्यबीजस्य""निधिर्धैर्यस्य'[3]
हर्ष०—'समाजं सौजन्यस्य"" आधारं धृतेः'[4]
यशस्तिलक०—'आकारावनिश्च सर्वगुणमणीनाम्'[5]
का०—'कुलभवनं गुणानाम्'[6]
यशस्तिलक०—'ज्वलन्निवान्तर्ज्वलितेन तेजसा'[7]
का०—'अतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्त्तिः'[8]
यशस्तिलक०—'इति महति भवति किंचिद्वदामि निःशेषतस्तु नो पारयामि।
वक्तुं त्वदीयगुणगरिमधाम सर्वज्ञवचनविषयं हि नाम।'[9]

तथा

'नृप महति भवति किंचिद्गिरामि वक्तुं गुणमखिलं नोत्तरामि।
दीप्तिर्द्युमणेरवनीश यत्र का शक्तिः काचमणेर्हि तत्र॥'[10]

हर्ष०—'आर्याः! क्व परमाणुपरिमाणमपटु हृदयं, क्व समस्तब्रह्मस्तम्बव्यापि देवस्य चरितम्। क्व परिमितवर्णवृत्तयः कतिपये शब्दाः, क्व सङ्ख्यातीतास्ते गुणाः। सर्वज्ञस्याप्यविषयः वाचस्पतेरप्यगोचरः, सरस्वत्या अप्यतिभारः किमुत अस्मद्विधस्य। कः खलु पुरुषायुषशतैरपि शक्नुयाद् अविकलमस्य चरितं वर्णयितुम्। एकदेशे तु यदि कुतूहलमस्ति सज्जा वयम्।'[11]

---

१. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० ४४
२. का०, पृ० १३
३. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० ४५
४. हर्ष०, पृ० १५४
५. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० ५५
६. का०, पृ० १३
७. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० १४८
८. का०, पृ० १०६
९. यशस्तिलक०, आश्वास १, पृ० १७८
१०. वही, आश्वास १, पृ० १८३
११ हर्ष० पृ० १३१ १३४

यशस्तिलक०—'सकलवर्णाश्रमाचारपरिपालनगुरुः'[1]

का०—'कमलासनमिवाश्रमगुरुम्'[2]

यशस्तिलक०—'पूज्यपाद इव शब्दैतिह्येषु, स्याद्वादेश्वर इव धर्माख्यानेषु, अकलङ्कदेव इव प्रमाणशास्त्रेषु, पणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु, कविरिव राजराद्धान्तेषु, रोमपाद इव गजविद्यासु, रैवत इव हयनयेषु, अरुण इव रथचर्यासु, परशुराम इव शस्त्राधिगमेषु, शुकनास इव रत्नपरीक्षासु, भरत इव संगीतकमतेषु, त्वष्टकिरिव विचित्रकर्मसु, काशिराज इव शरीरोपचारेषु, काव्य इव व्यूहरचनासु'[3]

का०—'तथाहि पदे, वाक्ये, प्रमाणे, धर्मशास्त्रे, राजनीतिषु, व्यायामविद्यासु, चापचक्रचर्मकृपाणशक्तितोमरपरशुगदाप्रभृतिषु सर्वेष्वायुधविशेषेषु, रथचर्यासु, गजपृष्ठेषु, तुरङ्गमेषु, वीणावेणुमुरजकांस्यतालदर्दुरपुटप्रभृतिषु वाद्येषु, भरतादिप्रणीतेषु नृत्यशास्त्रेषु, नारदीयप्रभृतिषु गान्धर्ववेदविशेषेषु, हस्तिशिक्षायाम्, तुरगवयोज्ञाने, पुरुषलक्षणेषु, चित्रकर्मणि, यन्त्रच्छेद्ये, पुस्तकव्यापारे, लेख्यकर्मणि, सर्वासु द्यूतकलासु, गन्धशास्त्रेषु, शकुनिरुतज्ञाने, ग्रहगणिते, रत्नपरीक्षासु, दारुकर्मणि, दन्तव्यापारे, वास्तुविद्यासु, आयुर्वेदे, मन्त्रप्रयोगे, विषापहरणे'[4]

यशस्तिलक०—'इय हि राज्यरमाभिलाषितसमागमापि प्रायो निसर्गविनीताचारमपि राजकुमारमभिनवयौवनाङ्गनेवच्छलयति सद्वृत्तोपपत्तिषु मनसि, अन्धयति सन्मार्गदर्शनेषु लोचनयोः, बधिरयति हितोपदेशेषु श्रवणयोः, निपातयति च नियमेन दुरन्तासु तासु व्यसनसंततिषु। यौवनाविर्भावः पुनः क्षात्रपुत्राणां भूतावतार इव हेतुरात्मविडम्बनस्य, प्रसवागम इव कारणं मदस्य, उन्मादयोग इव प्रसव-

१. यशस्तिलक०, आश्वास २, पृ० २०६

२. का०, पृ० १३१

३. यशस्तिलक०, आश्वास २, पृ० २३६–२३७

४ का० पृ० २२६ २३०

भूमिरज्ञानविलसितस्य मदनकारकोपयोग इव च निदान-
मनर्थपरम्परायाः ।'[1]

तथा

'यस्मिन् रजः प्रसरति स्खलितादिवोच्चै—
रान्ध्यादिव प्रबलना तमसश्चकास्ति ।
सत्त्वं तिरोभवति नीतमिवाङ्गजाग्ने—
स्तद्यौवनं विनय सज्जनसंगमेन ॥

यविनयचातुरीरुचिरचरित्रपवित्र पुत्र, त्वयि स्वभावादेव विदूरि-
। महाभागमनसि न किंचिदुपदेष्टव्यमस्ति ।'[2]

-तात ! चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य ते
नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति ।.........गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वम
प्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वञ्चेति महतीय खल्वनर्थपरम्परा ।
सर्वाविनयानामेयामायतनम्, किमुत समवायः । यौवनारम्भे च
प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्म्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः ।
अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः । अपहरति च
वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरम् आत्मेच्छया
यावनसमये पुरुष प्रकृतिः । इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमति-
दुरन्तेयम् उपभोगमृगतृष्णिका नवयौवनकषायितात्मनश्च
सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्या-
पतन्ति मनसः । नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुष-
मत्यासङ्गो विषयेषु । भवादृशा एव भवन्ति भाजनानि
उपदेशानाम् ।'[3]

लक०—'तातस्तावज्जडनिबिरभूत्मोदर, कालकूटः
कृष्णो यस्याः प्रणयपरता पङ्कजातं रतिश्च ।
लक्ष्म्यास्तस्याः सकलनृपतिस्वैरिणीवृत्तिभाजः
कः प्रेमान्धो भवतु कृतधीर्लोकविप्लाविकायाः ॥'[4]

यशस्तिलक०, आश्वास २, पृ० २८०-२८१
वही, आश्वास २, पृ० २८२
का०, पृ० ३११–३१४
यशस्तिलक०, आश्वास २, पृ० २८१

का०—'इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम् इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वेवोद्गता ।'[1]

यशस्तिलक०—'पुण्यं वा पापं वा यत्काले जन्तुना पुरा चरितम् ।
तत्तत्समये तस्य हि सुखं च दुःखं च योजयति ॥'[2]

का०—'जन्मान्तरकृतं हि कर्म्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि ।'[3]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह प्रकट हो जाता है कि सोमदेव, बाणभट्ट से अत्यधिक प्रभावित हैं।

— —

१. का०, पृ० ३१७
२. यशस्तिलक०, आश्वास ६, पृ० ३१४
३. का०, पृ० १९१

धनपाल

धनपाल का समय १० वीं शताब्दी ई० है।[1] उन्होंने तिलकमञ्जरी की रचना की है। उन्होंने बाणभट्ट का अनुकरण किया है। धनपाल, बाण, कादम्बरी तथा हर्षचरित का उल्लेख करते हैं।[2] अयोध्या नगरी[3] का वर्णन बाण[4] के आधार पर किया गया है; जिस प्रकार तारापीड पुत्र के दुःख से सन्तप्त हैं, उसी प्रकार मेघवाहन भी। मदिरावती[5] के वर्णन पर यशोवती[6] के वर्णन की छाया स्पष्ट है। कादम्बरी[7] के आधार पर तिलकमञ्जरी[8] में हार की योजना की गयी है। तिलकमञ्जरी में प्रस्तुत पुत्रजन्म[9] का वर्णन कादम्बरी[10] और हर्षचरित[11] के वर्णनों से प्रभावित है। अदृष्टपार[12] नामक सरोवर का वर्णन अच्छोद सरोवर[13] की अनुकृति पर किया गया है। इनके अतिरिक्त अनेक प्रसङ्गों की योजना बाण की सरणि पर की गयी है।

'कुरुत हरिचन्दनोपलेपहारि मन्दिराङ्गणम्, रचयत स्थानस्थानेषु रत्नचूर्णस्वस्तिकान्, दत्त द्वारि नूतनं चूतपल्लवदाम, विकिरतान्तरुत्फुल्लपङ्कजोपहारम्, कारयत सर्वतः शान्तिसलिलक्षेपमकृतकालक्षेपम्,

---

१. कीथ—संस्कृतसाहित्य का इतिहास, पृ० ३६१

२. 'केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसंनिधिः॥

कादम्बरीसहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि।
हर्षाख्यायिकया ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान्॥' तिलक० पृ० ४

३. वही, पृ० ७-११

४. का०, पृ० १५१-१६०

५. तिलक०, पृ० २१-२२

६. हर्ष०, पृ० १६७-१७८

७. का०, पृ० ५८०-५८१

८ तिलक० पृ० ४३

९. वही, पृ० ७६-७७

१०. का०, पृ० २१३-२२०

११. हर्ष०, पृ० १८६-१९९

१२. तिलक०, पृ० २०३-२०५

१३. का०, पृ० ३६९-३७७

आहरत भगवतीं षष्ठीदेवीम्, आलिखत जातमातृपटलम्, आरभध्व-मार्यवृद्धासपर्याम्, निधत्त पर्यन्तेषु शयनस्य सद्योभिमन्त्रितां रक्षा-भूतिरेखाम्, इत्यादि जल्पता तल्पनिकटोपविष्टेन शुद्धान्तजरतीजनेन क्रियमाणविविधशिशुरक्षाविधानम्'[1] पर कादम्बरी के सूतिकागृह[2] के वर्णन का प्रभाव है।

'तरङ्गिके, दूरमपसर। विघ्निता गतिस्तव जघनभित्त्या सर्वतो निरुद्धमार्गस्यास्य सैनिकवर्गस्य। लवङ्गिके, परिकरबन्धदर्शनेऽपि परिचारकः खिन्नसकलगात्रयष्टिर्यथैष कम्पते तथावश्यमवतरन्त्यास्त-रीतस्तव घनस्तनजघनभारेण पीडितो व्रीडयिष्यति प्रेक्षकजनम् व्याघ्रदत्त, धाव। शीघ्रमेषा विपद्यते निपतिता पोतात्पितामही मकरिकायास्तव श्वश्रूः। अश्रूणि किं सृजसि। विसृज वार्तामपि तस्य तथाविधस्थानपतितस्य दस्युनगरनारीकर्णभूषणसुवर्णस्य।'[3] इत्यादि वर्णन बाण[4] की शैली की अनुकृति पर किया गया है।

भावसाम्य के प्रदर्शन के लिये तिलकमञ्जरी तथा बाण के ग्रन्थों से उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

तिलक०—'तिग्मांशुमय इव तेजसि, सरस्वतीमय इव वचसि'

का०—'वाचि सरस्वत्या···तेजसि सवित्रा'[6]

तिलक०—'तमपि भुवनभारमनायासेनैव धृतासिता भुजेन यो बभार'[7]

का०—'वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन्'[8]

तिलक०—'उपहसितधिषणस्यापि'[9]

का०—'अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिः'[10]

तिलक०—'आत्मनाऽपि निःशेषितारिवंशतया विगतशङ्कः'[11]

का०—'विजिताशेषभुवनमण्डलतया विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः'[12]

---

१. तिलक०, पृ० ७७
२. का०, २१५–२१६
३. तिलक०, पृ० १२९
४. हर्ष०, २२३–२२६
५. तिलक०, पृ० १४
. का० पृ० ११
७. तिलक०, पृ० १५
८. का०, पृ० १६
९. तिलक०, पृ० १६
१०. का०, पृ० १९
११. तिलक०, १७
१२ का० पृ० १६

तिलक०—'कदाचिन्नीलपटावगुण्ठिताङ्गो लाङ्गलीव कालिन्दीजलवेणिकाः प्रत्यग्रमृगमदाङ्गरागमलिनवपुषो बहुलप्रदोषाभिसारिकाः मुहुरमाचकर्ष ।'[1]

का०—'कदाचित् नीलपटविरचितावगुण्ठनो बहुलपक्षप्रदोषदत्तसङ्केताः सुन्दरीरभिससार ।'[2]

तिलक०—'कदाचित् क्रीडायै चूतपराजित. पणितमप्रयच्छन् 'क्व गच्छसि' इति बद्धालोकभ्रुकुटिभिर्विदग्धवनिताभिराकृष्य कृतविषमपदपातो बलादिव दत्तकपाटसंपुटेषु वासवेश्मसु सपत्नीसमक्षमेवाक्षिप्यत ।'[3]

का०—'कदाचित् सङ्केतवञ्चिताभिः प्रणयिनीभिराबद्धभङ्गुरभ्रूकुटिभिरारणितमणिपारिहार्यमुखरभुजलताभिर्वकुलकुसुमावलीभि. संयतचरणः नखकिरणविमिश्रैः कुसुमदामभिः कृतापराधो दिवसमताड्यत ।'[4]

तिलक०—'अबाधकं लोकद्वयस्य'[5]

हर्ष०—'लोकद्वयाविरोधिभिः'[6]

तिलक०—'सेवकानुरागस्य संरक्षणाय च वितीर्णसर्वविसरमन्तरान्तरा सभामण्डपमध्यास्त । धर्मपक्षपातितया च देवद्विजातितपस्विजनकार्येषु महत्सु कार्यासन भेजे ।'[7]

का०—'प्रजानुरागहेतोरन्तरान्तरा दर्शनं ददौ । सिंहासनञ्च निमित्तेष्वारुरोह ।'[8]

तिलक०—'पुण्यपरिणतिरिव लावण्यस्य, संकल्पसिद्धिरिव संकल्पयोनेः सर्वकामावाप्तिरिव कमनीयतायाः'[9]

हर्ष०—'आज्ञासिद्धिरिव मकरध्वजस्य''''''मनोरथसमृद्धिरिव रामणीयकस्य, दैवसम्पत्तिरिव लावण्यस्य'[10]

तिलक०—'नदीतटतरुमिव स्फुटोपलक्ष्यमत्राणजटम्'[11]

---

१. तिलक०, पृ० १७
२. का०, पृ० १८२
३. तिलक०, पृ० १८
४. का०, पृ० १८०
५. तिलक०, पृ० १९
६. हर्ष०, पृ० ११२
७. तिलक०, पृ० १९
८. का०, पृ० १८३
९. तिलक०, पृ० २२
१०. हर्ष०, पृ० १३८
११. तिलक०, पृ० २४

का०—'नदीतटतरुरिव सततजलक्षालनविमलजटः'[1]

तिलक०—'अमरशैलमिव स्वयपतितकल्पद्रुमदुकूलवल्कलावृतनितम्बम्'[2]

का०—'विटप इव कोमलवल्कलावृतशरीरः'[3]

तिलक०—'आचारमिव चारित्रस्य······शुद्धिसचयमिव शौचस्य, धर्माधिकारमिव धर्मस्य, मर्दस्वदायमिव दयायाः'[4]

हर्ष०—'धाम धर्मस्य······पत्तनं पूततायाः······आकर करुणायाः'[5]

तिलक०—'शान्त्युदकशीकरैरिव दृष्टिपातैर्दूरीकृतो दुरितराशिरस्य'[6]

का०—'पुण्यजलैः प्रक्षालयन्निव मामतिप्रशान्तया दृष्ट्या दृष्ट्वा'[7]

तिलक०—'इदं राज्यम्, एषा मे पृथिवी, एतानि वसूनि, असौ हस्त्यश्वरथपदातिप्रायो बाह्यः परिच्छदः, इदं शरीरम्, एतद् गृहं गृह्यतां स्वर्थसिद्धये परार्थसपादनाय वा, यदत्रोपयोगार्हम्'[8]

हर्ष०—'तस्मै राजा सान्तःपुरं सपरिजनं सकोशमात्मानं निवेदितवान्।'[9]

तिलक०—'केवलमभूमिर्मुनिजनो विभवानाम्। विषयोपभोगगृध्नवो हि धनान्युपाददते। मद्विधास्तु संन्यस्तसर्वारम्भाः समस्तसङ्गविरता निर्जनारण्यबद्धगृहबुद्धयो भैक्षमात्रभावितसंतोषा किं तैः करिष्यन्ति।'[10]

हर्ष०—'जन्मनः प्रभृति अदत्तदृष्टिरस्मि स्वापतेयेषु। यतः सकलदोषकलापानलेन्धनैर्धनैरविक्रीत क्वचिच्छरीरकमस्ति। भैक्षसंरक्षिता सन्ति प्राणाः।'[11]

तिलक०—'सलिलनिर्भराम्भोधरनिनादगम्भीरेण स्वरेण मधुरमब्रवीत्'[12]

हर्ष०—'दधीचस्तु नवाम्भोभरगम्भीराम्भोधरध्वाननिभया भारत्या नर्तयन्निव'[13]

तिलक०—'द्रष्टा कालत्रितयवर्तिनां भावानाम्'[14]

---

१. का०, पृ० ११२
२. तिलक०, पृ० २५
३. का०, पृ० १११
४. तिलक०, पृ० २५
५. हर्ष०, पृ० १२५
६. तिलक०, पृ० २६
७. का०, पृ० १४१
८. तिलक०, पृ० २६
९. हर्ष०, पृ० १९७
१०. तिलक०, पृ० २६
११. हर्ष०, पृ० १५६
१२. तिलक०, पृ० ३१
१३. हर्ष०, पृ० ४३
१४. तिलक०, पृ० ३९

तिलक०—'किं वा न विदधासि कल्याणमाराध्यमानानुजीविनाम् ।'[1]
हर्ष०—'आर्य, करिष्यति प्रसादनाराध्यमाना ।'[2]
तिलक०—'इतस्ततो विचरन्तीभिर्वारवनिताभिः कृतावतरणकमङ्गल'[3]
का०—'आचारकुशलेनान्तःपुरजरतीजनेन क्रियमाणावतरणकमङ्गलाम्'[4]
तिलक०—'उपस्पृश्य च समाघ्रातधूपधूमवर्तिः'[5]
का०—'परिपीतधूमवर्त्तिः उपस्पृश्य च'[6]
तिलक०—'देवि, संपन्नास्ते गुरुजनाशिषः । प्रसन्ना समासन्नैव देवी राजलक्ष्मीः । भविष्यत्यशेषभूभृच्चक्रचूडारत्नमचिरेणैव सूनुः ।'[7]
का०—'देव, सम्पन्नाः सुचिरादस्माकं प्रजानाञ्च मनोरथाः । कतिपयैरेवाहोभिरसंशयमनुभविष्यति स्वामी सुतमुखकमलावलोकनसुखम् ।'[8]
तिलक०—'प्रतिदिवसमुपचीयमानगर्भा'[9]
का०—'प्रतिदिनम् उपचीयमानगर्भा'[10]
तिलक०—'अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे समागते च दशमेऽह्नि कारयित्वा सर्वनगरदेवतायतनेषु पूजाम् मानयित्वा मित्रज्ञातिवर्गम्, अभ्यर्च्य गुरुजनम्, दत्वा समारोपिताभरणाः सवत्साः सहस्रशो गाः सुवर्णं च प्रचुरमारम्भनिःस्पृहेभ्यो विप्रेभ्यः स्वप्ने शतमन्युवाहनो वारणपतिर्दृष्ट इति संप्रधार्य तस्यैव स्वप्नस्य सदृशमात्मीयनाम्नश्चैकदेशेन समुदायवाच्येन चार्थेन समर्थितानुहारं हरिवाहन इति शिशोर्नाम चक्रे ।'[11]
का०—'अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे, प्राप्ते दशमेऽहनि, पुण्ये मुहूर्ते गाः सुवर्णं च कोटिशो ब्राह्मणान्कृत्वा "मातुरस्य मया परिपूर्णमण्डल-

---

१. तिलक०, पृ० ५८
२. हर्ष०, पृ० ५२
३. तिलक०, पृ० ६५
४. का०, पृ० २०९-२१०
५. तिलक०, पृ० ६९
६. का०, पृ० ५०
७. तिलक०, पृ० ७४
८. का०, पृ० २०१
९. तिलक०, पृ० ७५
१०. का०, पृ० २०३
११. तिलक०, पृ० ७८

श्चन्द्रः स्वप्ने मुखकमलमाविशन् दृष्टः'' इति स्वप्नानुरूपमेव सूनोः चन्द्रापीड इति नाम चकार ।'[1]

तिलक०—'क्षितितलन्यस्तजानुहस्तयुगला सविनयं व्यजिज्ञपत्'[2]

का०—'क्षितितलनिहितजानुकरकमला सविनयमब्रवीत्'[3]

तिलक०—'ससंवर्तकाम्बुदर्दुदिन इव करिणीकरासारैः'[4]

का०—'सनीहारमिव यामकुञ्जरघटाकरशीकरैः'[5]

तिलक०—'आत्मप्रतिबिम्बकैरिव समानरूपैः समानवयोभिः समानवसनालंकारधारिभिरव्यभिचारिभिः प्रधानराजपुत्रैः परिवृतम्'[6]

का०—'समानवयोविद्यालङ्कारैः''''''आत्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः'[7]

तिलक०—'अवधिरद्भुतानाम्, निदर्शनं दर्शनीयानाम्'[8]

का०—'दृष्ट आह्लादनीयानामवधिः''''''विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः'[9]

तिलक०—'हन्त, कस्मान्मया मिथ्याकुतूहलतरलितेन सहसैव तुर्यरवमुपमृत्य धावता शिशुनेव लघुता परामात्मा नीतः।''''''अहो चञ्चलस्वभावता चित्तपरिणतेः'[10]

का०—'किमिति निरर्थकमयमात्मा मया शिशुनेवायासितः। किमनेन गृहीतेनागृहीतेन वा किन्नरयुगलेन प्रयोजनम्। यदि गृहीतमिद ततः किम्, अथ न गृहीतं ततोऽपि किम्? अहो! मे मूर्खतायाः प्रकारः, अहो! यत्किञ्चनकारितायामादरः'[11]

तिलक०—दृष्टा समस्तरमणीयानां सीमा, विलोकितः कौतुकविधायिनामवधिर्वीक्षितः विस्मयनीयानामन्तः, साक्षात्कृतमद्भुतानामास्पदम्, आसादितं महिम्नामायतनम्, अधिगतमगाधानामधिष्ठानम्।'[12]

---

१ का०, पृ० २२६-२२७
२. तिलक०, पृ० ८०
३ का०, पृ० २२
४. तिलक०, पृ० ८७
५. का०, पृ० २७२
६ तिलक०, पृ० १००
७. का०. पृ० २०
८. तिलक०, पृ० १४७
९. का०, पृ० ३७५
१०. तिलक०, पृ० १४८-१४९
११. का०, पृ० ३६३
१२ तिलक० पृ० २०५

का०—'अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकित खलु रमणीयानामन्तः, दृष्ट आह्लादनीयानामवधिः, वीक्षिता मनोहराणां सीमन्तलेखा प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजननानां परिसमाप्तिः विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः।'[१]

तिलक०—'जलदेवतानूपुरनिनादजर्जरैः राजहंसानां श्रोत्रहारिभिः कोलाहलैरभ्यर्थित इवाकारित इव कृतस्वागत इव जलाभिमुखमुच्चचाल।'[२]

का०—'कमलमधुपानमत्तानाञ्च श्रोत्रहारिभिः कलहंसानां कोलाहलैराहूयमान इव प्रविवेश।'[३]

तिलक०—'करेणुराज इव विलोकयन् कमलिनीखण्डानि, षडङ्घ्रिरिवाजिघ्रन् सहस्रदलकमलामोदम्, इन्दुरिव मोचयन् कुमुदमुकुलोदरसंदानितान्यलिकदम्बकानि, प्रदोष इव विघटयन् रथाङ्गमिथुनानि, राजहंस इवोल्लसल्लहरीपरम्पराप्रेर्यमाणमुत्ततार।'[४]

का०—'ततश्च प्रक्षालितकरयुगलः चातक इव कृत्वा जलमयमाहारम्, चक्राह्वय इवास्वाद्य मृणालशकलानि, शिशिरांशुरिव कराग्रैः स्पृष्ट्वा कुमुदानि, फणीवाभिनन्द्य जलतरङ्गवातान्, अनङ्गशरप्रहारातुर इवोरसि निधाय नलिनीदलोत्तरीयम्, अरण्यराज इव शीकरार्द्रपुष्करोपशोभितकरः सरःसलिलादुदगात्।'[५]

तिलक०—'कन्दमिव हिमाद्रेरुदरमिव क्षीरोदस्य, हृदयमिव हेमन्तस्य, शरीरान्तरमिव शिशिरानिलस्य'[६]

का०—'हृदयमिव हिमवतः, जलक्रीडागृहमिव प्रचेतसः'[७]

तिलक०—'अन्तरात्मना मदनमयमिव शृङ्गारमयमिव प्रीतिमयमिवानन्दमयमिव विलासमयमिव रम्यतामयमिवोत्सवमयमिव सकलजीवमाकलयन्'[८]

हर्ष०—'अनङ्गयुगावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पाद-

---

१. का०, पृ० ३७५
२. तिलक०, पृ० २०६
३. का०, पृ० ३६९
४. तिलक०, पृ० २०६-२०७
५. का०, पृ० ३६८-३७६
६. तिलक०, पृ० २१२
७. का०, पृ० ६१३
८. तिलक०, पृ० २१२

यन्तम्, विलासमयमिव जीवलोकं जनयन्तम्, अनुरागमयमिव सर्गान्तरमानयन्तम्, शृङ्गारमयमिव दिवसमापादयन्तम्'[1]
—'लिखितामिवोत्कीर्णामिव निवातामिव स्तम्भितामिव'[2]
—'स्तम्भितेव, लिखितेव, उत्कीर्णेव'[3]
—'अहो दुर्विजन्मान्तरसंचितैरशुभकर्मभिरायोजिताः सुनिपुणमपि निरूपितोपायैर्मनोरथैरनिवार्याः परिहर्तुमुपतापाः, येनेदमपहाय परमसक्लेशहेतु सकलमङ्गमेकाकिनी विगतमर्त्यसंचारे गुरुणि गिरिकान्तारे कृतस्थितिरनेकयोजनशतव्यवहितमेकदेशेनैव समोज्य सामीदृशस्य मानसदुःखभारस्य भाजनं कृता महानुभावा दैवेन इति सोद्वेगविस्मय. समाश्वास्य तां सुचिरमुत्थाय च कराञ्जलिपुटावर्जित दीर्घिकाजलमुपानयम्। सापि किंचिद्विरलशोका''''भाल प्रक्षाल्य तेन प्रमृज्य चोत्तरीयपल्लवप्रान्तेन वदनमुत्सृष्टदीर्घनिःश्वासा विलम्ब्य कंचित्कालमुपचक्रमे वक्तुम्'[4]
—'अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम्, यदीदृशीमप्याकृतिमनभिभवनीयामात्मीया कुर्वन्ति। सर्वथा न न कञ्चन स्पृशन्ति शरीरधर्म्माणमुपतापाः। '''उत्थाय प्रस्रवणादञ्जलिना मुखप्रक्षालनोदकमुपनिन्ये। सा तु तदनुरोधादविच्छिन्नवाष्पजलधारासन्तानामपि किञ्चित्कषायितोदरे प्रक्षाल्य लोचने वल्कलोपान्तेन वदनमपमृज्य दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य शनैः शनैः प्रत्यवादीत्'[5]

---

[1] ..., पृ० ३५
[2] ...क०, पृ० २५२
[3] ... पृ० ४२१
[4] तिलक०, पृ० २५८–२५६
[5] का०, पृ० ४०८

सोड्ढल

सोड्ढल ने उदयसुन्दरीकथा की रचना की है। इनके आश्रय-दाता कोकण के राजा मुम्मुणिराज थे। मुम्मुणिराज का १०६० ई० का शिलालेख प्राप्त होता है।[१] सोड्ढल ने बाण का अनुकरण किया है। कादम्बरी की कल्पना-सरणि का उदयसुन्दरीकथा पर बहुत अधिक प्रभाव है।

सोड्ढल ने अनेक स्थलों पर बाण की प्रशंसा की है—

'श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।
गीर्हर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः॥'[२]

'बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य शक्तिं न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति।'[३]

'सहकविभिः किमपि बाणभट्टाभिनन्दप्रभृतिकविचक्रकवितावरिष्ठगोष्ठीभिः'[४]

'बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती चकास्ति यस्योज्ज्वलवर्णशोभा।
एकातपत्रं भुवि पुष्यभूतिवंशाश्रयं हर्षचरित्रमेव॥'[५]

'रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि।'[६]

जिस प्रकार हर्षचरित में आठ उच्छ्वासों की योजना की गयी है, उसी प्रकार उदयसुन्दरीकथा भी आठ उच्छ्वासों में उपनिबद्ध हुई है। बाण ने प्रथम उच्छ्वास में अपने वंश का वर्णन किया है। इसका अनुकरण करते हुये सोड्ढल ने भी प्रथम उच्छ्वास में अपने वंश का वर्णन किया है। प्रतिष्ठान नामक नगर का वर्णन उज्जयिनी के वर्णन के आधार पर किया गया है। मन्त्री विभूतिवर्द्धन का वर्णन शुकनास के वर्णन की अनुकृति पर उपनिबद्ध हुआ है। सोड्ढल ने शरद्[७] का वर्णन बाण[८] के आधार पर किया है। कादम्बरी की भाँति उदय-

१. पाण्डेय तथा व्यास, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० ४०६
२. उदय०, पृ० २
३. वही, पृ० ३
४. वही, पृ० २७
५. वही, पृ० १५४
६. वही, पृ० १५७
७. वही, पृ० २५-२६
८. हर्ष०, पृ० १२१-१२२

सुन्दरीकथा में शुक की योजना की गयी है। कादम्बरी का शुक आर्या का पाठ करता है—

'राजानमुद्दिश्यार्य्यामिमां पपाठ—

'स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्तिहृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ॥'[1]

उदयसुन्दरीकथा का शुक दो आर्याओं का पाठ करता है—

'शुकः साट्टहासं विहस्य प्रस्तुतेनार्थेन युगलमार्ययोः पपाठ—

'एकेन म्रियमाणः पलायितोऽन्यस्य गोचरे पतितः।
गतोऽन्यस्य मुखे किमन्यदहमहो बलवती नियतिः ॥

अथवा

जीवितविपर्ययान्मृत्युं मृत्युमुखाज्जीवितं च नियमेन।
जनमानयति नयत्यपि विरमति न क्वाप्यसौ नियतिः ॥'[2]

कादम्बरी का शुक आश्चर्यमय है। उदयसुन्दरीकथा के शुक का चित्रण कादम्बरी के आधार पर हुआ है। कादम्बरी में शुक की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। सोड्ढल ने इसका अनुकरण किया है।

सोड्ढल ने चण्डिकायतन की कल्पना बाण से ली है। कापालिक के वर्णन पर 'जरद्द्रविडधार्मिक' के वर्णन का प्रभाव है। जिस प्रकार कादम्बरी में वैशम्पायन ही शापग्रस्त होकर शुक हुआ है, उसी प्रकार उदयसुन्दरीकथा का शुक भी शप्त है। उदयसुन्दरीकथा में अश्व की योजना इन्द्रायुध की योजना के आधार पर हुई है। उदयसुन्दरीकथा में तड़ाग की कल्पना अच्छोदसरोवर की अनुकृति पर की गयी है। राक्षस की कल्पना का आधार शबरसेनापति की कल्पना है। सोड्ढल ने तपश्चर्या करती हुई महाश्वेता के वर्णन का अनुकरण करके तपस्या करती हुई एक कन्या का वर्णन किया है।

जिस प्रकार कादम्बरी के 'तथाहि कदाचिदुल्लसत्कठोरकपोलपुलकजर्जरितकर्णपल्लवानां''' '''कदाचिन्मकरकेतुकनकनाराचपरम्पराभिरिव'''कदाचित् कुचचन्दनचूर्णधवलितोर्म्मिमालम्'[3] इत्यादि वर्णन में कदाचित् का प्रयोग किया गया है, उसी प्रकार उदयसुन्दरीकथा में भी 'कदाचिदास्थानमण्डपगतः'''कदाचित् कविसभामधिष्ठितो विचारयन्'''

१. का०, पृ० २८–२६ २. का०, पृ० १७८–१७६
३. उदय०, पृ० ३४

कदाचित् तुरगवाहनविलासमनुसरन्.........कदाचिन्मृगयामुपेत'[1] इत्यादि वर्णन में कदाचित् का प्रयोग प्राप्त होता है। उदयसुन्दरीकथा के 'उपविष्टः सह मन्त्रिभिः किमपि पृथुभरतभगीरथादिपूर्वभूपालचरितानां विचारेण सह सामन्तैः किमपि निगृहीतदुर्दमारातिवार्ताभिः, सह सुभटै किमपि विदग्धसमारोपरचनाख्यानकरसेन, सह कविभिः किमपि बाणभट्टाभिनन्दप्रभृतिकविचक्रकवितावरिष्ठगोष्ठीभिः, सह तार्किकैः किमपि प्रमाणशास्त्रोपन्यासविभ्रमेण, सह विलासिनीभिः किमपि शृङ्गाररसानुवर्तनेन......'[2] इत्यादि वर्णन का आधार 'स कदाचिदनवरतदोलायमानरत्नवलयो घर्घरिकास्फालनप्रकम्पमानझणझणायमानमणिकर्णपूरः स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः सङ्गीतकप्रसङ्गेन...... कदाचिदाख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन'[3] इत्यादि प्रतीत होता है।

'अवाप्तोऽस्मि चाद्य न खल्विदमीदृशं विहङ्गरत्नमवनिमण्डलाभरणस्य राज्ञो निवानीकृत शोभते इति भवनमगच्छत्नेदात्र तमादाय समागतस्तदेष बहिरानीतो दारकस्य करे तिष्ठतीति विज्ञप्ते देवस्य मनः प्रमाणमित्युक्त्वा व्यरमत्'[4] का आधार कादम्बरी का अधोलिखित वर्णन है—

'सकलभूतलरत्नभूतोऽयं वैशम्पायनो नाम शुकः। सर्वरत्नानाञ्च उदधिरिव देवो भाजनमिति कृत्वैनमादायास्मत्स्वामिदुहिता देवपादमूलमायाता, तदयमात्मीयः क्रियतामित्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पञ्जरममावपससार।'[5]

उदयसुन्दरीकथा के 'देव क्षत्रियपुङ्गव! प्रहरतः सङ्ख्येष्वसङ्ख्य मद—

प्रस्यन्दप्रसरान्धसिन्धुरशिरःस्कन्धं कृपाणस्य ते।
धारासङ्गतमौक्तिकद्युतिपरीवेषच्छलादन्तिके
दत्तः काण्डपटो झटित्यभिसृतारातिश्रियः सङ्गमे॥'[6]

तथा

'ये दानोद्धुरगन्धसिन्धुरघटाकुम्भान् भृशं भिन्दतो
लग्नाः संयति वर्त्तुलोज्ज्वलरुचो राजन्! कृपाणे तव।

---

१. उदय०, पृ० २५
२. वही, पृ० २७
३. का०, पृ० ११
४. उदय०, पृ० ३५
५. का०, पृ० ३८
६. उदय०, पृ० ३१

लोकस्तान् प्रविवक्ति मौक्तिकमणीन् मिथ्यैव सत्यं पुन—
स्ते धाराजलमज्जदूर्जितशिखरोल्लसद्बुद्बुदाः ॥'[१]

श्लोकों की कल्पना का आधार 'अन्य च मदकलकरिकुम्भपीठपाटनमाचरता लग्नस्थूलमुक्ताफलेन दृढमुष्टिनिष्पीडननिष्ठ्यूतधाराजलबिन्दुदन्तुरेणेव कृपाणेनोपशोभमाना मुक्ताफलाघटितकवचसहस्रान्धकारान्धवर्तिनी करिकरटगलितमदजलासारदुर्दिनास्वभिसारिकेव समरनिशासु समीपमलङ्कराजगाम राजलक्ष्मीः।'[२] है।

'रोहिण्यरुन्धत्यौ शशिवसिष्ठयोरुदयानुदयेऽपि पार्श्वं न मुञ्चत, श्रीः सोदरेण मणिना कौस्तुभेन लब्धमाराण्यजहन्मुरद्विषं ······उमापि परिगृह्य कायार्द्धमन्धकरिपोरङ्कमिलितैवास्ते।'[३] पर बाण के अधोऽङ्कित वर्णन का प्रभाव है—

'तस्य च जन्मान्तरेऽपि सती पार्वतीव शङ्करस्य, गृहीतहृदया लक्ष्मीरिव लोकगुरोः, स्फुरत्तरलतारका रोहिणीव कलावतः······ ··· दिवानिशमपुक्तपार्श्वस्थितिः अरुन्धतीव महामुनेः'[४]

'अथ तस्मिन्निरस्ततमसि धवलितनभसि विकासितकुमुदसरसि निहतराजीवयशसि स्रावितशशिकान्तपयसि शून्यीकृतसङ्केतसदसि विधुरितविरहिचेतसि विवर्द्धितानङ्गतेजसि जगदाह्लादनपटीयसि विचरति सौधांशवे महसि'[५] पर हर्षचरित के अधोलिखित वर्णनका प्रभाव है—

'जलदेवतातपत्रे पत्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे निजमधुमधुरामोदिनि कृतमधुपमुदि मुमुदिषमाणे कुमुदवने··· ··· ···सन्ध्यानुबन्धाताम्रे परिणमत्तालफलत्वक्त्विषि कालमेघमेदुरे मेदिनीं निमीलयति नववयसि तमसि ······विलीयमाने मानिनीमनसीव शर्वरीशबरीचिकुरचये चापत्विषि तमसि··· ···अचलच्युतचन्द्रकान्तजलधाराधौत इव ध्वस्ते ध्वान्ते······ प्रवृत्ते पूरयितुं पयोधिमिन्दुमण्डले'[६]

निर्मांसतया जानुजङ्घाननेषु, नयनदशनस्तनेषु च वास्तवं स्निग्धत्वम्, असावप्युच्छ्रायवती ग्रीवा, खुरेषु निष्ठितमेव काठिन्यम्, पृथूनि च ललाट-

---

१. उदय०, पृ० २१
२. का०, पृ० १६
३. उदय०, पृ० ११
४. हर्ष०, पृ० १७६–१७७
५. उदय०, पृ० ७४
६. हर्ष०, पृ० २४–२५

कटिस्कन्धपृष्ठाक्षिवक्षःस्थलानि…… …[1] आदि वर्णन पर इन्द्रायुध के वर्णन का प्रभाव देखा जा सकता है।

उदयसुन्दरीकथा तथा बाण के ग्रन्थों के समानभाव वाले कुछ उद्धरण अधोलिखित हैं—

उदय०—'अमलमरकतोपलफलकसङ्घट्टसृष्टैरट्टालकैरलङ्कृतेन सितमणिनिर्माणवता प्राकारचक्रेण कुण्डलितम्'[2]

का०—'गगनपरिसरोल्लेखिशिखरमालेन कैलासगिरिणेव सुधासितेन प्राकारमण्डलेन परिगता'[3]

उदय०—'वारिभिरापूर्णगर्भया परिखया प्रपञ्चितोपान्तरमणीयम्'[4]

का०—'द्वितीयपृथिवीशङ्कया च जलनिधिनेव रसातलगभीरेण परिखावलयेन परिवृता'[5]

उदय०—'अमरमन्दिरश्रेणिभिरभिरामचत्वरोद्देशम्'[6]

का०—'अमरमन्दिरैः विराजितशृङ्गाटका'[7]

उदय०—'निरन्तरमापणैः सारीकृतक्रोडम्'[8]

का०—'महाविपणिपथैरुपशोभिता'[9]

उदय०—'कुन्तलेषु तटे गोदावरीति महासरितः प्रतिष्ठानं नाम नगरम्'[10]

का०—'अवन्तीपूज्जयिनी नाम नगरी'[11]

उदय०—'यस्य च महापङ्कमग्नाऽदिकूर्मपृष्ठावस्थानलग्नमम्भसा धारागतेन क्षालयितुमिवात्मनः पङ्कमावासिता कृपाणे काश्यपी'[12]

का०—'अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसम्पर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती यस्य विमले कृपाणधाराजले चिरमुवास राजलक्ष्मीः।'[13]

उदय०—'यस्य च निकामवृद्धा वृद्धोचित चरितमादृत्य त्रिपथगामिन्या

---

१. उदय०, पृ० १२५
२. वही, पृ० २०
३. का०, पृ० १५१
४. उदय०, पृ० २०
५. का०, पृ० १५१
६. उदय०, पृ० २०
७ का० पृ० १५१
८. उदय०, पृ० २०
९. का०, पृ० १५२
१०. उदय०, पृ० २१
११. का०, पृ० १६०
१२. उदय०, पृ० २३
१३. का०, पृ० १५

गीर्वाणसरितः स्रोतसां त्रयेऽपि स्नातुमभिलषन्तीव बभ्राम भुवनत्रयं कीर्तिः ।'[1]

का०—'यस्य चामृतामोदसुरभिनः हरिमन्दरा मन्दराद्रिमथ्यमानबहलदुग्धसिन्धुफेनलेखयेव धवलीकृतसुरासुरलोकया दशसु दिक्षु गुञ्जरितभुवनमभ्रम्यत कीर्त्या ।'[2]

उदय०—'भुवः सम्बन्धेन च स्वामिकृत्येन चरितार्थतया सुस्थितान्तःकरणवृत्तिरनुभवितुमशेषाणि संसारसुखानि कर्तुं यौवनोचितान् विलासान्, विधातुमभिमताभिलाषपरिपूर्तिभिः कृतार्थं जन्म, समग्रगृहपरिग्रहादिचिन्तापरं राज्यमभितोऽपि धीमतां धुरन्धरे मन्त्रिणि समस्तमारोपयामास'[3]

का०—बाहुदण्डेन विजित्य सप्तद्वीपवलयां वसुन्धरां तस्मिन् शुकनासनाम्नि मन्त्रिणि सुहृदीव राज्यभारमारोप्य सुस्थिताः प्रजाः कृत्वा कर्त्तव्यशेषमपरमपश्यत् । प्रशमिताशेषविपक्षतया विगताशङ्कः शिथिलीकृतधनुर्धराव्यापारः प्रायशो यौवनसुखमनुबभूव ।'[4]

उदय०—'यो नूनमनिर्मथितसमुद्रमनिरस्तसत्त्वमपीडितभोगीश्वरमक्षपितविबुधलोकममन्दरागप्रपञ्चमेकेनैव प्रज्ञागुणेनाकृष्य लक्ष्मीं निजस्वामिनः सततमुरःस्थलनिवाससुस्थितामकरोत्'[5]

का०—'यो नरकासुरशस्त्रप्रहारमार्गेण भ्रमन्मन्दरनितम्बनिर्दयनिष्पेषकठिनांसपीठे नारायणवक्षःस्थलेऽपि स्थितामचुम्बकशलाभामसन्यत प्रज्ञाबलेन लक्ष्मीम् ।'[6]

उदय०—' उदञ्चितेन ध्वनिना ननाद मध्याह्नसमयशंसी शङ्खः'[7]

का०—'मध्याह्नशङ्खध्वनिरुदतिष्ठत् ।'[8]

उदय०—'विन्नस्तशेखरोड्डीयमानमधुकरजालैः श्यामलो हलधरकृष्यमाणप्रवाह इव यमुनाजलस्य'[9]

---

१. उदय०, पृ० ९३
२. का०, पृ० १७१
३. उदय०, पृ० २४
४. का०, पृ० १७७
५. उदय०, पृ० २४
६. का०, पृ० १७६
७. उदय०, पृ० ३८
८. का०, पृ० ४१
९. उदय०, पृ० ३९

का०—'मदकलहलधरहलमुखोत्क्षेपविकीर्णबहुस्रोतसमम्बरतले कलिन्द-कन्यामिव दर्शयन्तः'[1]

उदय०—'हरित्करिकपोलमण्डलादुच्चलितः पूर्वस्यां यामिनीपर्यटनप्रवृत्तानां'''त्रिशंकुतिलकितायां'''फणापञ्जर इव प्रविततः प्रतीच्यां'''कुबेरनगरगर्भे संभृतश्चोत्तरस्यां दिशि'[2]

का०—'प्रथमं प्राचीम्, ततस्त्रिशङ्कुतिलकाम्, ततो वरुणलाञ्छनाम्, अनन्तरञ्च सप्तर्षिताराशबलां दिशं विजिग्ये।'[3]

उदय०—'अग्रे च तस्यैव भूभृतो मेखलायामत्यन्तशीतलाभोगं प्रभेदमिव हिमस्य, संसारमिव चन्दनस्य, परिणाममिव चन्द्रमसः, सन्तानमिव शीतकालस्य''' सञ्चिताम्बुसर्वस्वं कोशमिव वर्षागमस्य, सुस्वादुजलमयं रूपान्तरमिव समुद्रस्य'''चक्रव्यूहमिव वरुणराजस्य'[4]

का०—'हृदयमिव हिमवतः, जलक्रीडागृहमिव प्रचेतसः, जन्मभूमिमिव सर्वचन्द्रकलानाम्, कुलगृहमिव सर्वचन्दनवनदेवतानाम्, प्रभवमिव सर्वचन्द्रमणीनाम्, निवासमिव सर्वमाघमासयामिनीनाम्, सङ्केतसदनमिव सर्वप्रावृषाम्'[5]

———

१. का०, पृ० ७५
२. उदय०, पृ० ७२
३. का०, पृ० ३६१
४. उदय०, पृ० १२९
५. का०, पृ० ६१३

कल्हण

कल्हण ने राजतरङ्गिणी की रचना की है। यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। कल्हण के पिता कश्मीर के राजा हर्ष (१०८९–११०१ ई०) के अनुजीवी थे।

राजतरङ्गिणी में बाण के अनेक प्रयोग प्राप्त होते हैं। 'वैकल्ये मनसि' प्रयोग राजतरङ्गिणी तथा हर्षचरित दोनों में प्राप्त होता है।[1] राजतरङ्गिणी में 'महाऽनर्थपरंपराम्' प्रयोग प्राप्त होता है।[2] कादम्बरी में 'सहनीयं बलवदनर्थपरम्परा' प्रयोग मिलता है।[3] राजतरङ्गिणी में 'गन्धर्वनगरोपमाम्' प्रयोग किया गया है,[4] जबकि कादम्बरी में 'गन्धर्वनगरलेखेव' प्रयोग हुआ है।[5] 'अतिक्रामति काले' प्रयोग राजतरङ्गिणी तथा हर्षचरित दोनों में प्राप्त होता है।[6] कादम्बरी के 'तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्'[7] का राजतरङ्गिणी के 'तिमिरदोषघ्नं हि चक्षुः'[8] पर प्रभाव है। 'ज्येष्ठामूलीये मासि' प्रयोग राजतरङ्गिणी तथा हर्षचरित दोनों में है।[9] अधोलिखित विशिष्ट शब्दों का प्रयोग राजतरङ्गिणी और बाण के ग्रन्थों में प्राप्त होता है—

अन्तर्वर्त्ती (राज०, पृ० ६; हर्ष०, पृ० ४०), सुधामूर्ति (राज०, पृ० १९; का०, पृ० १६६), उल्लाघता (राज०, पृ० १६; हर्ष० (उल्लाघ), पृ० २४), तालावचरण (राज०, पृ० ६२; हर्ष० (तालावचर), पृ० १९१), ढौकित (राज०, पृ० ६६; हर्ष०, पृ० ८७), परार्घ्य (राज०, पृ० ७०; हर्ष०, पृ० ३२६), चक्षुष्य (राज०, पृ० ७२; हर्ष०, पृ० ९२), निर्वहण (राज०, पृ० ७३; हर्ष०, पृ० १०), भृङ्गार (राज०, पृ० १०६; हर्ष०, पृ० २६१), मुमूर्षु (राज०, पृ० १०६; हर्ष०, पृ० ३९२), परिपन्थी (राज०, पृ० ११२; हर्ष०, पृ० २७८), चेलचीरा (राज०, पृ० ११५; का० (चेलचीर),

---

१. राज०, पृ० ६; हर्ष०, पृ० ४०

२. राज०, पृ० १३

३. का०, पृ० ३१२

४. राज०, पृ० १८

५. का०, पृ० ३१९

६. राज०, पृ० ५४; हर्ष०, पृ० १९६

७. का०, पृ० ३३३

८. राज०, पृ० ९७

९. राज०, पृ० २८२; हर्ष०, पृ० १८२

पृ० २१७), गणरात्र (राज०, पृ० १२१; हर्ष० पृ० ४६), बन्धकी (राज०, पृ० १२२; का०, पृ० ६६७), व्यवहारी (राज०, पृ० १२५; हर्ष०, पृ० २३०), आस्थान (राज०, पृ० १२९; का०, पृ० २३), द्रोणी (राज०, पृ० १३०; का०, पृ० ४६), जाहक (राज०, पृ० १४८; हर्ष०, पृ० ३७६), पारिहार्य (राज०, पृ० १५१, हर्ष०, पृ० ३९५), तर्णक (राज०, पृ० १५६; हर्ष०, पृ० ११७), वात्या (राज०, पृ० १५९; हर्ष०, पृ० ३०६), कार्तान्तिक (राज०, पृ० १६२; हर्ष०, पृ० २२८) आदि ।

बाण के द्वारा प्रयुक्त अनेक क्रियायें भी राजतरङ्गिणी में मिलती हैं—

प्रायात् (राज०, पृ० ३७; हर्ष०, पृ० २४९), समदृश्यत (राज०, पृ० ३९; का०, पृ० १४४), जगाहे (राज०, पृ० ६७; का०, पृ० १८१), शुशुभे (राज०, पृ० ४३; हर्ष०, पृ० १६२), प्रजज्वाल (राज०, पृ० ७४; हर्ष०, पृ० २८०), अनीयत (राज०, पृ० ७४; हर्ष०, पृ० ३०१), जहार (राज०, पृ० १०३; का०, पृ० ५८३), चिच्छिदुः (राज०, पृ० १३१; हर्ष०, पृ० ३०१), उच्चखान (राज०, पृ० १३६; हर्ष०, पृ० २४२), प्राहिणोत् (राज०, पृ० १५८; का०, पृ० २३३), व्यरंसिषुः (राज०, पृ० ३५५; हर्ष०, पृ० ३०६) आदि ।

कल्हण, बाण से प्रभावित हैं। राजतरङ्गिणी में बाण के विशिष्ट शब्दों और क्रियाओं के प्रयोग मिलते हैं ।

वादीभसिंह

वादीभसिंह दिगम्बरजैनमतावलम्बी थे। इनका समय १२ वीं शताब्दी ई० है।[1] इनका नाम ओडयदेव था। पण्डित इनकी शास्त्रार्थ निपुणता के कारण इन्हें वादीभसिंह कहते थे। इनके दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि। गद्यचिन्तामणि गद्य की उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। वादीभसिंह ने बाण का अनुकरण किया है। गद्यचिन्तामणि की रचना बाण की भाषा और शैली के आधार पर की गयी है।

वादीभसिंह ने बाण की भाँति परिसंख्या अलङ्कार का प्रयोग किया है। गद्यचिन्तामणि में शुकनासोपदेश के आधार पर उपदेश की योजना की गयी है।[2] वादीभसिंह ने शुक के प्रसङ्ग की उपस्थापना बाण की अनुकृति पर की है।[3] कादम्बरी के शुक की भाँति गद्यचिन्तामणि का शुक भी श्लोक पढ़ता है—'तथा मन्यमानं मारमहनीयं कुमारमादरादभिप्रणम्य सप्रश्रयं समर्पितसंदेशः समुत्क्षिप्य दक्षिण पादं पद्यमिदं पपाठ क्रीडाशुकः'[4]

वादीभसिंह ने बाण के वाक्य-विन्यास का अनुकरण किया है।

'आ महेन्द्रमदावलकलभकर्णतालपवनविधुतपादपकुसुमधूलीधूसरित-परिसरवनादुदयगिरेरा खेलद्वरुणारमणीचरणन्याससमिलदविरलपावकप-ल्लवितप्रस्तरादस्तगिरेरा शैलराजदुहितृकरनखलूनपल्लवभरकृतावनीरुह-शिखरोल्लासात्कैलासादा निशिचरकुलप्रलयधूमकेतोः सेतोरवनतमकुट-मणितटलुठितैर्माणिक्यमहःपल्लवैरर्चयन्ति नरच्चरणौ धरणीभुजः।'[5] पर अधोलिखित वाक्यविन्यास का प्रभाव है—

'आ रविरथचक्रचीत्कारचकितचारणमिथुनमुक्तसानोरुदयाचलाद्, आ च त्रिकूटकटककुट्टाकटङ्कलिखितकाकुत्स्थलङ्कालुण्ठनव्यतिकरात् सुवे-लाद्, आ च वारुणीमदस्खलितवरुणवारनारीनूपुररवमुखरकुहरकुक्षेरस्त-गिरेः, आ च गुह्यकगेहिनीनिधुवनपरिमलगन्धिगन्धपाषाणगुहागूहाच्च

---

१. M. Krishnamachariar, History of classical Sanskrit Literature, पृ० ४७७

२. गद्य०, पृ० ४१-४५

३. वही, पृ० ८१

४. वही, पृ० ८१

५. वही, पृ० २१

गन्धमादनात् सर्वेषां राज्ञां सज्जीक्रियन्तां कराः करदानाय शस्त्रग्रहणाय वा।'[१]

वादीभसिंह और बाण के अधोलिखित उद्धरण अवलोकनीय हैं—

गद्य०—'दिवसेऽपि रजनीविभ्रमविघटितरथाङ्गमिथुनाभिः'[२]

का०—'यस्याञ्चानुपजाततिमिरत्वादविघटितचक्रवाकमिथुना'[३]

गद्य०—'कुन्तलेषु कुटिलता'[४]

का०—'अन्तःपुरिकालकेषु भङ्गः'[५]

गद्य०—'समाप्तभूमिरिव सौन्दर्यपरमाणूनाम्...प्रकर्षरेखेव स्त्रीत्वस्य—कीर्तिरिव चारित्रस्य, विजयपताकेव पञ्चशरस्य, विजया नाम महिषी।'[६]

हर्ष०—'आज्ञासिद्धिरिव मकरध्वजस्य...दिष्टिवृद्धिरिव रतेः...सर्गसमाप्तिरिव सौन्दर्यस्य...यशःपुष्टिरिव चारित्रस्य'[७]

गद्य०—'तथाभावितया तस्य वस्तुनो दुर्निवारतया मकरध्वजस्य दुरतिक्रमतया च नियतेः'[८]

का०—'अथ कृतप्रणामायां मयि दुर्लङ्घ्यशासनतया भगवतः मनोभुवः ....तथाभवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुनः, किं बहुना मम भाग्यदौरात्म्यादस्य चेदृशस्य क्लेशस्य विहितत्वात्'[९]

गद्य०—'पुराकृतसुकृतेतरकर्मपरिपाकपराधीनायां विपदि विषादस्य कोऽवसरः।'[१०]

हर्ष०—'अपि च, पुराकृते बलवति कर्मणि शुभेऽशुभे वा फलकृति तिष्ठत्यधिष्ठातरि प्रष्ठे पृष्ठतश्च को वावसरो विदुषि शुचाम्।'[११]

गद्य०—'भवितव्यता फलतु वा कामम्। का तत्र प्रतिक्रिया। न हि पुराकृतानि पुरुषैः पौरुषेण शक्यन्ते निवारयितुम्।'[१२]

का०—'जन्मान्तरकृतं हि कर्म्म फलमुपनयति पुरुषस्येहजन्मनि, न हि शक्यं दैवमन्यथा कर्त्तुमभियुक्तेनापि।'[१३]

---

१. हर्ष०, पृ० २१२
२. गद्य०, पृ० ७
३. का०, पृ० १६२
४. गद्य०, पृ० १०
५. का०, पृ० १८
६. गद्य०, पृ० १३-१४
७. हर्ष०, पृ० १७८
८. गद्य०, पृ० १५-१६
९. का०, पृ० ४२७-४२८
१०. गद्य०, पृ० १९
११. हर्ष०, पृ० २६
१२. गद्य०, पृ० २०
१३. का०, पृ० १६१

गद्य०—'उभयतविधुतवारयुवतिकरतलविधुतधवलचमरवालपवननर्तितचेलाञ्चलम्'[1]

का०—'चामरपवनप्रनर्तितान्तदेशे दुकूले वसानम्'[2]

गद्य०— साम्राज्यमिव सौभाग्यस्य संकेतसिद्धिक्षेत्रमिव कंदर्पस्य सारमिव संसारस्य'[3]

हर्ष०—'सिद्धिक्षेत्रमिव सौभाग्यस्य, पुनर्जन्मदिवसमिव मन्मथस्य—दुःकर्मदक्षिणामिव संसारस्य'[4]

गद्य०—'मेचके कञ्चुकयति भुवनमभिनवे तमसि'[5]

हर्ष०— कालमेघमेदुरे मेदिनी निमीलयति नववयसि तमसि'[6]

गद्य०—'यस्मिंश्च कृतावतारे कारागृहस्य करत्रोटितशृङ्खला विशृङ्खलगत-यश्चिरकालकृतधरणीशयनमलिनितवपुषो बन्दीपुरुषाः पला-यमाना इव कलिसैन्याः समन्ततो धावेयुः'[7]

हर्ष०— प्रलम्बश्मश्रुजालजटिलाननानि अक्षालितमलकलङ्कपङ्ककायानि विनश्यतः कलिकालस्य बान्धवकुलानीवाकुलान्यधावन्त मुक्तानि बन्धनानि।'[8]

गद्य०—'आत्मनः प्रतिबिम्बैरिव समानवयोरूपलावण्यैर्वयस्यैरुपास्य-मानम्'[9]

का०—'समानवयोविद्यालङ्कारैः''''''आत्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः'[10]

गद्य०—'वत्स, बलनिषूदनपुरोधसमपि स्वभावतीक्ष्णया धिषणया धिक्कुर्वति सर्वपथीनपाण्डित्ये भवति पश्यामि नावकाशमुपदे-शानाम्। तदपि कलशभवसहस्रेणापि कवलयितुमशक्यः प्रलय-तरणिपरिषदाप्यशोष्यो यौवनजन्मा मोहमहोदधिः। अशेषभेष-जप्रयोगवैफल्यनिष्पादनदक्षो लक्ष्मीकटाक्षविक्षेपविसर्पी दर्प-ज्वरः।''''''अवस्थाविषमविषमोक्षभीषणा राजलक्ष्मीभुजङ्गी। इति किंचिदिह शिक्ष्यसे।'[11]

---

१. गद्य०, पृ० २५
२. का०, पृ० २७
३. गद्य०, पृ० २५
४. हर्ष०, पृ० ३५—३६
५. गद्य०, पृ० २७
६. हर्ष०, पृ० २५
७. गद्य०, पृ० २८
८. हर्ष०, पृ० १८८
९. गद्य०, पृ० ३८
१०. का०, पृ० २०
११. गद्य०, पृ० ४१—४२

का०—'तात ! चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलञ्च निसर्गत एव अभानुभेद्यमरत्नालोकच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम् । अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। ... ...अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रः दर्पदाहज्वरोष्मा । ... इत्यतः विस्तरेणाभिधीयसे ।'[1]

गद्य०—'अविनयविहंगलीलावनं यौवनमनङ्गभुजङ्गनिवासरसातलं सौन्दर्यं स्वैरविहारशैलूषनृत्तास्थानमैश्वर्यं पूज्यपूजाविलङ्घनलघिमजननी महासत्त्वता च प्रत्येकमपि प्रभवति जनानामनर्थाय। चतुर्णां पुनरेतेषामेकत्र सन्निपातः सद्म सर्वानर्थानामित्यर्थेऽस्मिन्कः संशयः।'[2]

का०—'गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वञ्चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा। सर्वाविनयानामेषामायतनम्, किमुत समवायः।'[3]

गद्य०—'भवद्विधा एव भव्यास्तादृशगुरूपदेशबीजप्ररोहभूमयः। नवसुधालेपधवलिमभासि सौधतले किरणकन्दला इव चन्द्रमसः स्वभावसुलभविवेकविद्राविततमसि मनसि विलसन्ति गुरूणां गिरः।'[4]

का०—'भवादृशा एव भवन्ति भाजनानि उपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेन उपदेशगुणाः।'[5]

गद्य०—'कथंचिदाकर्णयन्तोऽपि मधुमदमत्तमत्तकाशिनीवदनशीधुसंपर्कशिथिलितचित्तवृत्तय इव नूनमदत्तावधानाः खेदयन्तः स्वहितोपदेशकारिणः सूरीस्तदुक्तं नानुतिष्ठन्ति।'[6]

का०—'शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून्।'[7]

गद्य०—'स्वाभाविकाहंकारस्फारश्वयथुजातवेपथुविह्वला हि महीभृता प्रकृतिः।'[8]

---

१. का०, पृ० २११–२१२
२. गद्य०, पृ० ४२
३. का०, पृ० २१२
४. गद्य०, पृ० ४२
५. का०, पृ० २१४
६. गद्य०, पृ० ४३
७. का०, पृ० २१६–२१७
८. गद्य०, पृ० ४३

का०—'अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः'[1]

गद्य०—'इयं हि पारिजातेन सह जातापि लोभिनां धौरेयी, शिशिरकर-सोदरापि परसंतापविधिचतुरा, कौस्तुभमणिना सहोत्पन्नापि गुरुजनमत्रेविमुखी'[2]

का०—'इयं हि......लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्......कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम्'[3]

गद्य०— अद्य निराश्रया श्रीः, निराधारा धरा......निरालम्बा वीरता'[4]

हर्ष०—'तातें दूरीभूते सम्प्रत्येव कृत्स्नाधीश्चनोऽयं जीवलोकः।...... निरालम्बना विक्रमैकरसता।... समाश्रयतु राज्यश्रीराश्रम-पदम्। परिवहतां वल्कलं वालमी वसुन्धरा।'[5]

गद्य०—'विद्यान्तिकेति विद्यार्जनोत्सुकैः, विनयवर्धीति वणिग्भिः........ गिरिदुर्ग इति क्षेमार्थिभिः'[6]

हर्ष०—'गुरुकुलमिति विद्यार्थिभिः......लाभभर्मिरिति वेदेहकैः...... वज्रपञ्जरमिति शरणागतैः'[7]

गद्य०—'सा तु क्षेमश्रीः श्रवसि तद्वार्तां मनसि हृल्लेखं वपुषि प्रकम्पं चक्षुषि बाष्पधारामास्यविषण्णशुचं वदने वैवर्ण्यं नासिकायां दीर्घश्वासमास्ये परिदेवनं च यौगपद्येन भजन्तीः'[8]

हर्ष०—'दृष्ट्वा च तदा जाताशङ्कः चक्षुषि सलिलेन, मुखशशिनि श्वसनेन, हृदये हुताशनेन, उत्सङ्गे भुवा, दारुणाप्रियश्रवणसमये सममिव सर्वेष्वङ्गेष्वगृह्यत लोकपालैः।'[9]

गद्य०—'धिक्कृता धैर्येण......भर्त्सिता भाग्येन'[10]

हर्ष०—'चलितां धैर्येण......आधारमधृतीनाम्......अभियोगमभाग्यानाम्'[11]

गद्य०—'स्तम्भितेव समुत्कीर्णेव विलिखितेव'[12]

---

१. का०, पृ० ३१७
२. गद्य०, पृ० ४३
३. का०, पृ० ३१७
४. गद्य०, पृ० ८६–८७
५. हर्ष०, पृ० २५३
६. गद्य० पृ० १०१
७. हर्ष०, पृ० १४३
८. गद्य०, पृ० १०७
९. हर्ष०, पृ० २७६
१०. गद्य०, पृ० ११९
११. हर्ष०, पृ० ३८९
१२. गद्य०, पृ० १३०

का०—'स्तम्भितेव, लिखितेव, उत्कीर्णेव'[1]

गद्य०—'अभानुभेद्य तिमिर नराणाम्'[2]

का०—'केवलञ्च निसर्गत एव अभानुभेद्यं......तमो यौवनप्रभवम्।'[3]

बाण के ग्रन्थों तथा गद्यचिन्तामणि के उपर्युक्त उद्धरणों से यह प्रकट हो जाता है कि वादीभसिंह ने बाण का अनुकरण किया है। बाण की कल्पना, वाक्य-योजना, कथानक आदि के आधार पर वादीभसिंह ने गद्यचिन्तामणि को सजाने का प्रयास किया है। प्रसङ्गों की अवतारणा बाण के द्वारा सुनियोजित पद्धति की अनुकृति पर की गयी है। कवि बाण को आदर्श मानकर चलता है, अतः प्रत्येक वर्णन पर बाण का प्रभाव देखा जा सकता है।

---

१. का०, पृ० ४२३
२. गद्य०, पृ० १६०
३. का०, पृ० २११

श्रीहर्ष

श्रीहर्ष ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। उनका 'नैषधीयचरित' प्रसिद्ध महाकाव्य है। नैषधीयचरित की रचना १२वीं शताब्दी ई० के द्वितीय चरण के आस-पास हुई होगी।[1] श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्लदेवी था।

श्रीहर्ष पर भी बाण का प्रभाव प्राप्त होता है। नैषधीयचरित में कादम्बरी की वर्णन-प्रक्रिया का अनुकरण देखा जा सकता है। नल के घोड़े का वर्णन चन्द्रापीड के घोड़े इन्द्रायुध के वर्णन की भाँति है। नैषधीयचरित के इक्कीसवें सर्ग में शुक की योजना की गयी है। कादम्बरी में कादम्बरी के घर पर शुक और सारिका की योजना की गयी है। यहाँ श्रीहर्ष बाण का अनुकरण करते हैं। नैषधीयचरित के इक्कीसवें सर्ग में नल के स्नान, पूजा, भोजन आदि का वर्णन किया गया है। यह कादम्बरी के वर्णन से प्रभावित है।[2]

'सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं वपुस्तथालिङ्गदथास्य यौवनम्।'[3] पर 'कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन......नवयौवनेन पदम्।'[4] का प्रभाव है।

'उपाहरन्नश्वमजस्रचञ्चलैः खुराञ्चलैः क्षोदितमन्दुरोदरम्।'[5]

(निरन्तर चञ्चल खुराग्रों से अश्वशाला के मध्यभाग को चूर्णित करने वाले अश्व को ले आये) की रचना 'अनवरतपतनोत्पतनजनितविपनमुखरवैः पृथुभिः खुरपुटैर्जर्जरितवसुन्धरैः'[6] के आधार पर हुई है।

'अपि द्विजिह्वाभ्यवहारपौरुषे मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गया।
उपेयिवांसं प्रतिमल्लतां रयस्मये जितस्य प्रसभं गरुत्मतः॥'[7]

---

१. डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, नैषधपरिशीलन, पृ० ९

२. Dr. A. N. Jani, A Critical Study of Śrīharṣa's Naiṣadhīyacaritam, पृ० २६७

३. नैषध०, १।१९

४. का०, पृ० ४१२

५. नैषध०, १।५७

६. का०, पृ० २३६

७. नैषध०, १।६३

(वेग के अभिमान से बलपूर्वक जीते गये गरुड़ के सर्पभक्षणरूप पुरुषार्थ में भी मुख में लगी हुई दीर्घ और सुन्दर लगाम से प्रतिमल्लभाव को प्राप्त) की उपस्थापना 'निर्भर्त्सयन्तमिवालीकवेगदुर्विदग्धं गरुत्मन्तम्'[1] तथा 'जव-प्रतिपक्षमिव गरुत्मतः'[2] की अनुकृति पर की गयी है ।

'हरन्तमुच्चैःश्रवसः श्रियं हयम्'[3] का आधार 'अंशावतारमिवोच्चैः-श्रवसः'[4] है ।

'प्रसीद, प्राणैः समं प्राणसमे ! न गन्तव्यम् इति हृदयस्थितां मामिव धारयन्तम्'[5] के अनुकरण पर अधोलिखित श्लोक की रचना हुई है—

'समादरीदं विदरीतुमान्तरं तदर्थिकल्पद्रुम ! किञ्चिदर्थये ।
भिदां हृदि द्वारमवाप्य मैव मे हतासुभिः प्राणसमः समङ्गमः ॥'[6]

'मेरा यह हृदय विदीर्ण होने के लिये तैयार है, अतः हे याचकों के कल्पद्रुम ! मैं कुछ याचना करती हूँ । प्राणों के समान तुम (मेरे) हृदय में भेदनरूपी द्वार को प्राप्त कर मेरे अभागे प्राणों के साथ मत निकल जाना ।'

---

१. का०, पृ० २३७
२. वही, पृ० २४०
३. नैषध०, १।६४
४. का०, पृ० २४०
५. वही, पृ० ४८६
६. नैषध०, ९।१००

वामनभट्टबाण

वेमभूपालचरित के लेखक वामनभट्टबाण का समय १५ वीं शताब्दी ई० है। वामनभट्टबाण, बाणभट्ट से प्रभावित हैं। वे अपनी रचना के प्रारम्भ में बाण की प्रशंसा करते हैं।[1]

प्रोलभूपति का अरण्यानी में प्रविष्ट होना, हरिण से दूर तक आकृष्ट होना, अङ्गों के परिमल को धारण करने वाले पवन का आघ्राण, मधुर किन्नरगान का श्रवण, विश्वविमोहनसौन्दर्यवाली कन्यका का दर्शन आदि प्रसङ्ग कादम्बरी में किन्नरों का अनुसरण करते हुए चन्द्रापीड के सुन्दर प्रदेश के अभिवीक्षण, गीत के आकर्णन, दिव्यकन्यका के समालोकन आदि की याद दिलाते हैं।[2]

वेमभूपालचरित के कमलसर का वर्णन अच्छोद के आधार पर किया गया है। आहवकोलाहल नामक हाथी के वर्णन पर गन्धमादन नामक हाथी के वर्णन का प्रभाव है। विन्ध्याटवी, न्यग्रोध, चण्डिकालय आदि की उपपादनसरणि विन्ध्याटवी, शाल्मली, चण्डिकायतन आदि की वर्णनसृति का अनुकरण करती है।

वामनभट्ट की भाषा और शैली पर भी बाण का प्रभाव परिलक्षित होता है। वेमभूपालचरित तथा बाण के ग्रन्थों के अधोलिखित उद्धरणों पर दृष्टिपात करने से वामनभट्ट पर बाण का प्रभाव सुस्पष्ट हो जाता है—

वेम०—'मणिरिव सतां हृदयेन धार्यमाणः'[3]

का०—'तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम्।'[4]

वेम०—'अनेककुनृपतिचरितकल्मषनिर्वासनसर्वप्रायश्चित्तप्रतिनिधिरिव धरायाः'[5]

वेम०—'जननी कृतयुगस्य'[6]

तथा

---

१. 'बाणादन्ये कवयः काणाः खलु सरसगद्यसरणीषु। इति जगति रूढमयशो वामनबाणोऽपमाष्टि वत्सकुलः।' वेम०-पृ० २

२. वही, भूमिका, पृ० ८

३. वेम०, पृ० ४

४. का०, पृ० ४

५. वेम०, पृ० ४

६. वेम०-पृ० १०

'निवासभूमिरिव कृतयुगस्य'[1]

का०—'प्रसवभूमिरिव कृतयुगस्य'[2]

वेम०—'तत्र च बभूव क्रमेण मान्धातृभरतपृथुभगीरथदुष्यन्तधुन्धुमार-दशरथदिलीपप्रतिमः'[3]

हर्ष०—'स्यककुत्स्थनृगनलनहुषययातिधुन्धुमाराम्बरीषदशरथदिलीपनाभा-गभरतभगीरथोऽमृतमयः स्वामी ।'[4]

वेम०—'गुर्जरज्वरः'[5]

हर्ष०—'सिन्धुराजज्वरः'[6]

वेम०—'आरामरामणीयकाकृष्टहृदयः'[7]

का०—'अभिनवमृगयाकौतुकाकृष्यमाणहृदयः'[8]

वेम०—'ब्रह्मणो नूनं स्वर्गवधूसर्गपूर्वाभ्यसनेन सृष्टिनैपुणी जाता । अन्यथा कथमीदृग्वदनवनिर्माणकौशलं घटते'[9]

का०—'मन्ये च मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयादस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य । नहि करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवानामीदृगी भवति कान्तिः ।'[10]

वेम०—'क्वणितेवोत्कलिकया'[11]

हर्ष०—'आलिङ्गितेवोत्कण्ठया'[12]

वेम०—'कुमारीजनोचितामपि व्रीडामुन्मुच्य स्वयमभिसरणेन हृदयरुचितोऽयं जनः परिगृह्यताम्'[13]

का०—'यदि तावदितरकन्यकेव विहाय लज्जाम्...... स्वयमुपगम्य ग्राहयामि पाणिम्'[14]

वेम०—'अहो स्रष्टुः सृष्टयतिशयः'[15]

हर्ष०—'जगति स्रष्टुः सृष्टयतिशयाः ।'[16]

१. वेम०, पृ० १५
२. का०, पृ० १५१
३. वेम०, पृ० १६
४. हर्ष०, पृ० ८२
५. वेम०, पृ० १६
६. हर्ष०, पृ० १३४
७. वेम०, पृ० २७
८. का०, पृ० २००
९. वेम०, पृ० ३२
१०. का०, पृ० ३६
११. वेम०, पृ० ३३
१२. हर्ष०, पृ० ५०
१३. वेम०, पृ० ३४
१४. का०, पृ० ४७०
१५. वेम०, पृ० ३५
१६. हर्ष०, पृ० ३८

का०—'मणिजालगवाक्षनिक्षिप्तमुखी तामेव दिशं तत्सनाथतया...... दर्शनसुभगामीक्षमाणा'[१]

वेम०—'मुहुर्गवाक्षमणिकवाटशिखरविन्यस्तवामहस्तपल्लवा'[२]

का०—'मुहुर्नितम्बबिम्बन्यस्तवामहस्तपल्लवा'[३]

वेम०—'पुनरवतीर्ण इव पुष्पधन्वा'[४]

हर्ष०—'पुनर्जन्मदिवसमिव मन्मथस्य'[५]

वेम०—'प्रत्यग्ररविविरहशोकेन मूर्च्छन्तीष्विव मुकुलीभवन्तीषु कमलिनीषु'[६]

का०—'रविविरहमूर्च्छाविकारितहृदयास्विव प्रारब्धनिमीलनासु पद्मिनीषु'[७]

वेम०—'परिचारिकयेव प्रबलया वेदनया गृहीतसर्वावयवा'[८]

हर्ष०—'परिजनेन सन्तापेन च गृहीतसर्वावयवेन परीताम्'[९]

वेम०—'प्रतीहार्या प्रदर्श्यमानमार्गा'[१०]

हर्ष०—'दौवारिकेण उपदिश्यमानवर्त्मा'[११]

वेम०—'कीर्तिगङ्गाप्रवाहैरनेककुनृपतिचरितकलङ्किनीं क्षमां क्षालयन्'[१२]

का०—'अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसम्पर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती'[१३]

वेम०—'प्रज्वलन्तं प्रतापानलमुद्वहन्'[१४]

का०—'प्रतापानलो वियोगिनीनामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाहो दिवानिशं जज्वाल।'[१५]

वेम०—'भुजेन भूषणमिव भुवनभारमुद्वहन्'[१६]

का०—'वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन्'[१७]

वेम०—'सलिलनिधिरिव भाजनं सर्वरत्नानाम्'[१८]

१. का०, पृ० ४३६
२. वेम०, पृ० ७४
३. का०, पृ० ५८२-५८३
४. वेम०, पृ० ७६
५. हर्ष०, पृ० ३६
६. वेम०, पृ० ७७
७. का०, पृ० ४४७
८. वेम०, पृ० ७३
९. हर्ष०, पृ० २४५
१०. वेम०, पृ० ८३
११. हर्ष०, पृ० १०१
१२. वेम०, पृ० १००
१३. का०, पृ० १५
१४. वेम०, पृ० १००
१५. का०, पृ० १६
१६. वेम०, पृ० १०१
१७. का०, पृ० १६
१८. वेम०, पृ० १०२

का०—'सर्वरत्नानाञ्च उदधिरिव देवो भाजनमिति'[१]
वेम०—'कुङ्कुमपिङ्गलेन स्वतेजसा लिम्पन्तमिव भवनोदरम्'[२]
का०—'उत्तप्तकल्याणकान्तिस्वरभास्वरया स्वदेहप्रभया पूरयन्तमिव वासभवनम्'[३]
वेम०—'चक्रवर्तिलक्षणोपेतम्'[४]
हर्ष०—'सप्तानां चक्रवर्तिचिह्नानां समाश्रयः'[५]
वेम०—'यस्मिंश्च परिपालयति वसुन्धराम्'[६]
का०—'यस्मिंश्च राजनि जितजगति परिपालयति महीम्'[७]
वेम०—'अथ नरपतेर्दिग्विजययात्रामुद्घोषयन्ती गभीरभैरवं रराण भेरी ।'[८]
का०—'दिग्विजयप्रयाणशंसी...... प्रस्थानदुन्दुभिरामन्थरं दध्वान ।'[९]
वेम०—'अस्वर्णमणिकुट्टिमतलसंक्रान्तप्रतिबिम्बतया'[१०]
का०—'अमलमणिकुट्टिमसंक्रान्तसकलदेहप्रतिबिम्बतया'[११]
वेम०—'परिणतकरभकण्ठरुहकपिशः'[१२]
का०—'क्वचित् क्रमेलकसटासन्निभः'[१३]
वेम०—'कुपितकलशभवहुंकारनिपतितनहुषबृहदजगरभोगभीकराकारैः'[१४]
का०—'अगस्त्यप्रसादनागतनहुषाजगरकायशङ्कामकरोदृषिजनस्य ।'[१५]
वेम०—'भ्रूभङ्गानिव तरङ्गानुद्वहद्भिः सरोवरशतैः सनाथीकृतपरिसराम्'[१६]
का०—'महाकालस्य शिरसि सुरसरितमालोक्य समुपजातेर्ष्ययेव सतताबद्धतरङ्गभ्रूकुटीलेखया'[१७]
वेम०—'स्वर्गप्रासादसोपानपङ्क्तिभिः'[१८]

---

१. का०, पृ० ३८
२. वेम०, पृ० ११४
३. का०, पृ० २२०
४. वेम०, पृ० ११७
५. हर्ष०, पृ० १८७
६. वेम०, पृ० ११६
७. का०, पृ० १७
८. वेम०, पृ० १२३
९. का०, पृ० ३३८-३३९
१०. वेम०, पृ० १२६
११. का०, पृ० २८
१२. वेम०, पृ० १२९
१३. का०, पृ० ३४६
१४. वेम०, पृ० १३२
१५. का०, पृ० ६६
१६. वेम०, पृ० १९२
१७. का०, पृ० १५४
१८. वेम०, पृ० २०५

का०—'आबध्यमानस्वर्गमार्गगमनसोपानसेतुमिवोपलक्ष्यमाणम्'[1]
वेम०—'अतिगम्भीरेण नगरप्रवेशमङ्गलपटहायमानेन हेषारवेण पूरितभुवनरन्ध्रम्'[2]
का०—'प्रकम्पितोदररन्ध्रेण हेषारवेण पूरितभुवनोदरविवरेण'[3]
वेम०—'रभसगतिषु मानसीं गतिमतिवर्तमानम्'[4]
का०—'वेगसब्रह्मचारिणमिव मनसः'[5]
वेम०—'उच्चैःश्रवसमिव विडम्बयन्तम्'[6]
का०—'अंशावतारमिवोच्चैःश्रवसः'[7]
वेम०—'उपरिप्लुतैर्गरुडोल्लङ्घनशिक्षामिवाभ्यस्यन्तम्'[8]
का०—'निर्भर्त्सयन्तमिवालीकवेगदुर्विदग्धं गरुत्मन्तम्'[9]
वेम०—'आयतनिर्मांसमुखम्'[10]
का०—'अत्यायतं निर्म्मांसतया समुत्कीर्णमिव वदनमुद्वहन्तम्'[11]

वेमभूपालचरित पर बाण का विशिष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। वामनभट्ट ने बाण की कल्पना, वाक्य-योजना, भाषा, चरित्रचित्रण की प्रक्रिया, कथांशपटलों की अवतारणा आदि का अनुगमन किया है।

---

१. का०, पृ० ११८
२. वेम, पृ० २०७
३. का०, पृ० २३७
४. वेम, पृ० २०७
५. का०, पृ० २४०
६. वेम०, पृ० २०७
७. का०, पृ० २४०
८. वेम०, पृ० २०७
९. का०, पृ० २३७
१०. वेम०, पृ० २०८
११. का०, पृ० २३८

अम्बिकादत्त व्यास

संस्कृत के आधुनिक लेखकों पर भी बाण का विभारी प्रभाव परिलक्षित होता है। अम्बिकादत्त व्यास (१९ वीं शताब्दी ई०) संस्कृत के उच्चकोटि के गद्यकार हैं। उनकी 'शिवराजविजय' नामक रचना अत्यन्त प्रसिद्ध है। अम्बिकादत्त व्यास, बाण के भाव-सम्भार, रसनिर्वाह तथा कथा-सूत्र आदि का आश्रय लेते हैं। शिवराजविजय की कथा की योजना का सूत्र कादम्बरी से लिया गया है। कादम्बरी में दो प्रेमी और दो प्रेमिकाओं की कथा साहित्य के शत-शत विलासों की सोपानपरम्पराओं से मण्डित है और उसका लोकोत्तर विकास सम्पुष्ट किया गया है। महाश्वेता पुण्डरीक से प्रेम करती है, कादम्बरी चन्द्रापीड से। इसके आधार पर शिवराजविजय में भी दो स्वतन्त्र कथाओं का परिकर परिकल्पित किया गया है। एक कथा के नायक शिवाजी हैं और दूसरी के रघुवीर। एक ओर रोशनआरा (औरंगजेब की लड़की) का शिवाजी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है, दूसरी ओर रघुवीर और सौवर्णी का अनुराग पल्लवित होता है।

भाषा और अलङ्कार के क्षेत्र में भी शिवराजविजय पर बाण का प्रभाव परिलक्षित होता है। बाण की भाँति व्यास जी भी कभी-कभी दीर्घ वाक्यों का प्रयोग करते हैं। ऐसे स्थलों पर पदावली समासों से युक्त होती है और वाक्यों के द्वारा विविध भावों की अभिव्यञ्जना होती रहती है।

बाण की भाँति व्यास जी भी छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं—

'ततः कथं प्रचलितौ ? कथमत्रायातौ ? का घटना घटिता ? क उपायः कृतः ? किमाचरितम् ?'[1]

बाण ने हर्षचरित में बहुत-से ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो भारत के तात्कालिक सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक पक्षों का समुज्ज्वल चित्र प्रस्तुत करते हैं। व्यासजी ने भी ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो भारत की वर्तमान परिणति और परिक्षेप की झाँकी उपन्यस्त करते हैं।

बाण उत्प्रेक्षालङ्कार का अत्यधिक प्रयोग करते हैं। महाश्वेता कादम्बरी आदि के वर्णन में इसका अतिभास्वर और कमनीय निर्वाह हुआ है। व्यास जी इसका प्रयोग बाण से सीखते हैं।

---

१. शिव०, पृ० १३८

शिवराजविजय तथा बाण के अधोलिखित उद्धरणों से यह प्रकट हो जाता है कि अम्बिकादत्त व्यास, बाणभट्ट से प्रभावित हैं—

शिव०—'दीर्घमुष्णं निःश्वस्य'[१]

का०—'दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य'[२]

शिव०—'कुसुमानीव वर्षता'[३]

का०—'कुमुदवनानीव वर्षता'[४]

शिव०—'पीयूषप्रवाहेणेव सिञ्चता'[५]

का०—'सिञ्चतेवामृतरसविसरेण'[६]

शिव०—'पुञ्जीभूतमन्धकारमिव'[७]

का०—'अन्धकारपूरमिव रविकिरणाकुलितम्'[८]

शिव०—'अञ्जनरञ्जिताभिर्द्दग्भिरिन्दीवरमाला इव वर्षन्त्यः'[९]

का०—'लोचनमयूखलेखासन्तानेन नीलोत्पलदलमय इव'[१०]

शिव०—'प्रतिपदं पयःपूरेण प्लाव्यमान इव'[११]

का०—'क्षीरोदेनेव प्लाव्यमानां महीम्'[१२]

शिवराजविजय के 'मूर्तिमदिव कलियुगम्'[१३] पर 'कलिकालबन्धुवर्गमिव सङ्गतम्'[१४] का प्रभाव है।

राघवाचार्य सौवर्णी के विषय में कहता है—'रुद्राक्षमालाकलितवक्षाः स्थण्डिलशायिनी तडागकोणे एव शिवालयमेकमध्युष्य.................. शिवं पूजयन्ती समयं यापयति।'[१५]

यहाँ शिव के प्रति सौवर्णी की भक्ति और पूजा का आधार शिवपूजन में अनुरक्त महाश्वेता है। सौवर्णी की प्रतियातना की निर्मिति की वेला में कवि की दृष्टि महाश्वेता पर लगी है।

---

१. शिव०, पृ० ३७
२. का०, पृ० ४३३
३. शिव०, पृ० ६७
४. का०, पृ० ५१८
५. शिव०, पृ० ६७
६. का०, पृ० ५२५
७. शिव०, पृ० २२०
८. का०, पृ० ८८
९. शिव०, पृ० २९३
१०. का०, पृ० २५३
११. शिव०, पृ० ३३६
१२. का०, पृ० ५७३
१३. शिव०, पृ० ३३
१४. का०, पृ० ८८
१५. शिव०, पृ० ४८३

केशवदास

रामचन्द्रिका के रचयिता कवि केशव संस्कृत के उच्चकोटि के पण्डित थे। इसी लिये उनके साहित्य पर संस्कृत के ग्रन्थों का प्रभाव परिलक्षित होता है। वर्णन-परम्परा के अतिरिक्त संस्कृत की उक्तियों की छाया भी अनेक स्थलों पर प्राप्त होती है। वे कालिदास, बाण, माघ तथा भवभूति आदि से विशेष रूप से प्रभावित हैं।

केशव ने रामचन्द्रिका में कादम्बरी के भावों, अलङ्कारों तथा वर्णन-परिपाटी आदि का अनुकरण किया है।

बाणभट्ट वस्तुओं का अतिसूक्ष्म वर्णन करते हैं तथा परिसंख्या, उत्प्रेक्षा एवं उपमा आदि अलङ्कारों का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी तो वे उत्प्रेक्षाओं की सुदीर्घ सृति को एक ही वर्णन में मण्डित कर देते हैं। राज्य का वर्णन करते समय वे परिसंख्या का प्रयोग करते है।[1]

केशव भी रामराज्य का वर्णन करते हुये अनेक परिसंख्याओं का प्रयोग करते हैं।[2] रामनखशिख, पञ्चवटी, शयनागार, राजमहल, नृत्य, वसन्त तथा चन्द्र आदि के वर्णन में वे निश्चित ही बाणभट्ट की प्रक्रिया का आश्रय लेते हैं। बाण शूद्रक, विन्ध्याटवी, शबरसेनापति, जाबालि, उज्जयिनी, अच्छोदसरोवर, महाश्वेता, कादम्बरी आदि के वर्णन में पूर्ण चित्र उपस्थित कर देते हैं। वे एक वस्तु के अनेक स्वरूपों का संश्लिष्ट चित्रण सामने लाते हैं, जिसे पढ़कर हम बलात् आकृष्ट हो जाते हैं। बाण के कमनीय वर्णनो में उत्प्रेक्षा का मनोज्ञ विन्यास दृष्टिगत होता है। बाणभट्ट की भाँति केशव ने भी प्रायः उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया है।[3]

---

१. का० शूद्रकवर्णन (पृ० १७-१८) तथा तारापीडवर्णन (१७२-१७४)

२. के० ग्रं०, राम०, पृ० २८१

३. बोलत मोर तहाँ सुखसंजुत। ज्यों विरदावलि भाटन के सुत।
कोमल कोकिल के कुल बोलत। ज्ञानकपाट कुँची जनु खोलत॥
फूल तजै बहु वृक्षन को गनु। छाँडत आनँद-आँसुन को जनु।
दाड़िम की कलिका मन मोहति। हेमकुपी जनु बंदन सोहति॥
मधुबन फूल्यो देखि सुक बरनत है निरसंक।
सोहत हाटकघटित रितु-जुवतिन के ताटंक॥
—के० ग्रं०, राम०, ३२वाँ प्रकाश, पृ० ३८६-३८७

यद्यपि पम्पासर, कृत्रिमसरिता, जलाशय, जलक्रीडा आदि के वर्णन में वे भावो के लिए बाण की शरण मे नही जाते, तथापि अच्छोदसरोवर तथा कादम्बरी के रेखाचित्रो से अवश्य प्रभावित हैं। कृत्रिमसरिता और कृत्रिमपर्वत को योजना तो बाण के ही आधार पर करते हैं। पञ्चवटी, दण्डक, सूर्योदय आदि का वर्णन भी बाण के प्रकृति-चित्राङ्कन की आधारशिला पर चित्रित प्रतीत होता है।

रामकृतराज्यश्री की निन्दा तथा कादम्बरी के शुकनासोपदेश में पर्याप्त साम्य है।

बाण के प्रमुख अलङ्कार हैं—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोधाभास, परिसंख्या, अनुप्रास, यमक, श्लेष। केशव उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसंख्या तथा श्लेष का बड़ी ही कुशलता से प्रयोग करते हैं। वे इन अलङ्कारों का प्रयोग प्राय: उन्हीं वर्णनो मे करते हैं, जिनमे बाण ने किया है।

अवधपुरी का वर्णन करते हुए केशवदास बाण के द्वारा किए गये उज्जयिनी के चित्रण की ओर दृष्टि लगाये रहते हैं—

'चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि 'केसवदास' निहारि।
जनु बिस्वरूप की अमल आरसी रची बिरंचि बिचारि॥'[1]

बहुत-से घर अत्यधिक विचित्र चित्रों से चित्रित हैं। केशवदास का कथन है कि वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो संसार को एकत्र देखने के लिये ब्रह्मा ने विचार करके निर्मल दर्पण की रचना की है।

कादम्बरी का प्रयोग है—दर्शितविश्वरूपेव चित्रभित्तिभि:।[2] चित्रभित्तियों के द्वारा मानो विश्वरूप को प्रकट कर रही है। केशव ने इसी का अनुवाद कर दिया है तथा कुछ अन्य शब्दों की योजना कर दी है।

परिसंख्या का आश्रय लेकर वर्णन करते हैं—'मूलन ही की जहाँ अधोगति 'केसव' गाइय। होमहुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय। दुर्गति दुर्गन हीजु कुटिल गति सरितन ही में। श्रीफल को अभिलाष प्रगट कबिकुल के जी में॥[3]

केशव कहते हैं, जहाँ मूलों की ही अधोगति है (वृक्षो की जड़े ही नीचे जाती है, अयोध्या में अन्य किसी की अधोगति नही होती); नगर मे होमाग्नि के धूम मे ही मलिनता है (किसी के चरित्र में मलिनता नहीं); ......नदियो की ही चाल टेढ़ी है (नगर में किसी में कुटिलता नही); कवि ही श्रीफल की अभिलाषा

१. के० ग्रं०, राम०, प्रथम प्रकाश, पृ० २३३
२. का०, पृ० १५८
३. के० ग्रं०, राम०, प्रथम प्रकाश, पृ० २३४

करते हैं, अर्थात् कवि कामिनियों के कुचों की उपमा श्रीफल से देते हैं (अवधपुरी में किसी को धन की अभिलाषा नहीं)।

जाबालि-आश्रम के वर्णन के प्रसङ्ग में बाण परिसंख्या की रमणीय कूँची की योजना से आश्रम के चित्र की भव्य रेखायें खींच देते हैं—

'यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु'[१]
'कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः'[२]

केशव ने शब्दों में किञ्चित् परिवर्तन करके पद्यानुवाद कर दिया है।

'विधि के समान हैं विमानीकृतराजहंस बिबिध बिबुधजुत मेरु सो अचलु है। ......सब बिधि समरथ राजै राजा दसरथ, भगीरथपथगामी गंगा कैसो जलु है॥'[३]

जिस प्रकार ब्रह्मा राजहंस पर सवारी करते हैं, उसी प्रकार दशरथ ने भी अनेक श्रेष्ठ राजाओं को मानरहित कर दिया है।...राजा दशरथ पूर्वपुरुषों की नीति का उसी प्रकार अनुगमन कर रहे हैं, जिस प्रकार भगीरथ के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर गंगा का जल बहता है।

केशव का उपर्युक्त वर्णन बाण की निम्नलिखित योजना के आधार पर हुआ है—

'कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः......गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः'[४]

'तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर बर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारो सुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं।
सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै 'केसवदास' बिचित्र बन॥'[५]

पर 'तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलैः एलालताकुलितनारिकेलकलापैः, आलोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैः, उल्लसच्चूतरेणुपटलैः अलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैः उन्मदकोकिलकुलकलालापकोलाहलिभिः'[६] का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

---

१. का०, पृ० १२४ २. वही, पृ० १२५ ३. के० ग्रं०, राम०, द्वितीय प्रकाश, पृ० २३५ ४ का०, पृ० १२ ५. के० ग्रं०, राम०, तृतीय प्रकाश, पृ० २३८ ६. का०, पृ० ११६

केशव ने 'गति के भार महाउरैं'[१] प्रयोग किया है। वे स्त्रियाँ इतनी सुकुमार हैं कि चलते समय उन्हें महावर भी भार जान पड़ता है।

बाण ने अलक्तकरस को चरणों का भार कहा है—यत्र चालक्तकरसोऽपि चरणातिभारः।[२]

बाण ने विन्ध्याटवी का वर्णन बहुत ही विस्तृत रूप से किया है। केशव दण्डकवन का वर्णन अति सूक्ष्म रूप से करते हैं, पर बाण की एकाध सूझ का उपयोग कर ही लेते हैं—है सुभगा सम दीपति पूरी। सिंदुर कों तिलकावलि रूरी।[३] इस वन की शोभा सौभाग्यवती स्त्री-की-सी है, क्योंकि इसके पास सिन्दूर तथा तिलक वृक्षों की पङ्क्तियाँ हैं (सौभाग्यवती स्त्री सिन्दूर का तिलक लगाती है)।

बाण लिखते हैं—रुचिरागुरुतिलकभूषिता च।[४] केशव अगुरु के स्थान पर सिन्दूर की योजना करके अवशिष्ट कल्पना को तद्रूप में ही ग्रहण कर लेते हैं।

राम के द्वारा की गयी राज्यश्री की निन्दा शुकनासोपदेश से अत्यधिक प्रभावित है।

'सास्त्र-सुजलहूँ धोवत तात। मलिन होत अति ताके गात।
जद्यपि है अति उज्जल दृष्टि। तदपि सृजति रागन की सृष्टि॥'[५]

शास्त्ररूपी जल से धोने पर भी राज्यश्री के अङ्ग अत्यधिक मलिन हो जाते हैं। यद्यपि उसकी दृष्टि अत्यधिक उज्ज्वल होती है, तथापि विकारों की सर्जना करती है।

केशव के उपर्युक्त कथन पर बाण के 'यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजल-प्रक्षालननिर्म्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः।'[६] का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहा है।

यौवन के आरम्भ में प्रायः शास्त्रजल से प्रक्षालित होने के कारण निर्मल बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। धवलता का परित्याग न करने पर भी युवकों की दृष्टि राग से युक्त रहती है।

'सागर में बहु काल जु रही। सीत बक्रता ससि तें लही।
सुर-तुरंग-चरनन तें तात। सीखी चंचलता की बात॥
कालकूट तें मोहन रीति। मनिगन तें अति निष्ठुर प्रीति।'[७]

---

१. के० ग्रं०, राम०, छठाँ प्रकाश, पृ० २५६ २. का०, पृ० ५२८
३. के० ग्रं०, राम०, ११वाँ प्रकाश, पृ० २८५ ४. का०, पृ० ५६
५. के० ग्रं०, राम०, २३वाँ प्रकाश, पृ० ३५१ ६. का०, पृ० ३१२-३१३
७ के० ग्रं० राम० २३वाँ प्रकाश पृ० ३५२

यहाँ बाण की अधोलिखित कल्पना का भाषान्तर देखा जा सकता है—

इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्,
कालकूटान्मोहनशक्तिम्''' कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम् ।[1]

लक्ष्मी चन्द्रखण्ड से अत्यन्त वक्रता (कुटिलता, प्रतिकूलता), उच्चैःश्रवा से चञ्चलता (चपलता, अस्थिरता), कालकूट से मोहनशक्ति (मूर्च्छित करने की शक्ति, वशीकरण करने की शक्ति),'''तथा कौस्तुभ मणि से अत्यन्त निष्ठुरता को लेकर ही मानो बाहर आयी है।

'दृढ गुन बाँधेहुँ बहु भाँति। को जानै केहि भाँति बिलाति।
गज घोटक भट कोटिन अरै। खड्गलता पंजर हू परै ॥'[2]

दृढगुणरूपी रस्सी से बहुत प्रकार से बाँधने पर भी कौन जाने यह राज्यलक्ष्मी किस भाँति विलीन हो जाती है। चाहे हाथी, घोड़े तथा करोड़ो वीर रोकें और तलवार रूपी लता से पिंजड़ा बना दिया जाय (पर वह चञ्चल राज्यलक्ष्मी नही रुकती)।

बाण लिखते हैं—'दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति, उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृताप्यपक्रामति, मदजलदुर्दिनान्धकारगजघनघटापरिपालितापि प्रपलायते'[3]

दृढगुणरूपी रज्जु से बाँधने से निश्चल होने पर भी भाग जाती है। उत्कट अहङ्कार वाले सहस्रों योद्धाओं द्वारा उठायी हुई असि लताओं रूपी पञ्जर में बंद कर देने पर भी निकल जाती है। मदजलरूपी वृष्टि से अन्धकार उत्पन्न करनेवाले गजों रूपी घने बादलों से रक्षित होने पर भी चली जाती है।

बाण के भावों के आधार पर ही केशव ने पदों की रचना की है। शब्दों की योजना भी प्राय: बाण के आधार पर है।

'गुनवंतनि आलिंगति नहीं। अपवित्रनि ज्यों छाँडति तहीं ॥'[4]

गुणियों का आलिङ्गन नही करती। उन्हें उसी प्रकार छोड़ती है, जिस प्रकार अपवित्र वस्तु छोड़ी जाती है। केशव ने बाण के 'गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति'[5] का अनुवाद कर दिया है।

'सर्वेभ्यस्तीर्थेभ्यः सर्वाभ्यो नदीभ्यः सर्वेभ्यश्च सागरेभ्यः समाहृतेन सर्वौषधिभिः सर्वफलैः सर्वमृद्भिः सर्वरत्नैश्च परिगृहीतेन आनन्दबाष्पजलमिश्रेण मन्त्रपूतेन वारिणा सुतमभिषिषेच।'[6] का

१. का०, पृ० ३१७
२. के० ग्रं०, राम०, २३वाँ प्रकाश, पृ० ३५२
३. का०, पृ० ३१८
४. के० ग्रं०, राम०, २३वाँ प्रकाश, पृ० ३५२
५. का०, पृ० ३२१
६. वही, पृ० ३३६

'मातहु सिंधुन के जलरूरे। तीरथजालनि के पय पूरे।
कंचन के घट बानर लीने। आइ गए हरि-आनँद-भीने॥
सकल रतन सब मृतिका सुभ औषधी असेष।
सात दीप के पुष्प फल पल्लव रस सबिसेष॥'[१] पर प्रभाव दृष्टिगत हो रहा है।

बाण के 'चित्रकर्म्मसु वर्णसङ्कराः'[२] (चित्रकर्मों में वर्णसंकर है, प्रजाओं में नहीं) का 'चित्र ही में आज बर्नसङ्कर बिलोकियत'[३] अनुवादमात्र है।

"ध्वजेषु प्रकम्पाः'[४] (ध्वजों मे ही कम्पन है, प्रजाओं मे भय के अभाव के कारण कम्पन नहीं होता) का 'ध्वजै कंपजोगी'[५] अनुवाद है। 'होमधूम-मलिनाई जहाँ। अति चंचल चलदल है तहाँ। बालनास है चूड़ाकर्म।'[६] का आधार 'यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु......चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु......मुनिबालनाशः क्रतुदीक्षया न मृत्युना'[७] (जहाँ पर मलिनता हवन की धूमराशि में है, चरितों में नहीं; केले के पत्तों में चञ्चलता है, मनों मे नहीं; मुनियो के केशों का कर्तन यज्ञ की दीक्षा में होता है, मृत्यु से मुनियों के बालकों का नाश नहीं होता) है।

इनके अतिरिक्त अनेक प्रसंगों में केशव ने महाकवि बाण की कल्पनाओं तथा भावाभिव्यंजनाओं का ग्रहण किया है। प्रकृत परिवेश में तो दिङ्मात्र निर्देश किया गया है, जिससे विषय का स्फुटीकरण हो जाय और दोनों कवियों के सम्बन्ध की तन्वी रेखा तो खींची ही जा सके।

---

१. के०ग्रं०, राम०, २६वाँ प्रकाश, पृ० ३६२
२. का०, पृ० १७
३. के०ग्रं०, राम०, २७वाँ प्रकाश, पृ० ३६५
४. का०, पृ० १७
५. के० ग्रं०, राम०, २७वाँ प्रकाश, पृ० ३६५
६. वही, २८वाँ प्रकाश, पृ० ३७०
७. का०, पृ० १२४-१२५

पं० गोविन्दनारायण मिश्र

पं० गोविन्दनारायण मिश्र ने बाण की गद्य-शैली का अनुकरण किया है।[1] वे बाण की भाँति बड़े-बड़े वाक्यों की रचना करते थे। उनका अधोलिखित वाक्यांश दर्शनीय है—

'परन्तु चतुर सुजान विज्ञ विचारवानों के अपक्षपाती सदा अडिग न्याय के ही साथी सूक्ष्म विचारधर्म की अनमोल तुला पर धरकर तोल देखने पर नयनमन-मोहिनी विविध रङ्ग-सोहनी-आभा छन छन छिटकाते, अपनी अनोखी माया से जग भरमाते, चित्र विचित्र वर्ण-विन्यास-चतुरवर इतर-सकल-कला-कुशलवर चित्रकार का आसन भी, सरसरसभाव-पूर नूपुर-धुन गुनगुनाते मञ्जुलतर पदविन्यासलासविलास-विलासिनी सहज लीलावती-कविताकलकलन-चतुर यशस्वीशिरोमनि, अवनितल पर समतल-थलअचलजलधिरत्नाकर अपार परिपूर छाये सित फेन सकुचाये हिम-सहिम शीतल पड़े जहाँ के तहाँ जमाये, अत्र तत्र सर्वत्र बिछाये से भी न समाये आकाशलों छाये अपने अद्वितीय शोभा-शुभ्र-सुजस-अमीगुन से निरन्तर अमर नरवर, घर घर सदा सजीव अभिनवतर नवम चिरञ्जीव से सुहाये, परम सुघर सुकविवरों के सर्वप्रथम, सर्वप्रधान, सर्वोपरि विराजमान आदि माननीय सुरनरकमनीय निराले आसनों को अनन्य सुलभ गौरव-गरवीली अति चटकीली सुन्दर सजीली गुनगरिमा की गिनती में सबसे पहली सर्वश्रेष्ठ श्रेणी की परम प्रतिष्ठा वाली सजधज में सबसे निराली शोभावाली आदर अनुराग श्रद्धा-भक्ति और स्पर्द्धा से सदा पूजनीय पंक्ति से नीचे ही बिछाया हुआ मानना पड़ेगा'[2]

---

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ४६३-४६४
2. श्रीगोविन्द निबन्धावली, कवि और चित्रकार, पृ० २-३

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचना 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पर महाकवि बाण का प्रभाव है। बाणभट्ट की 'आत्मकथा' में बाण के जीवन के कुछ पटल हर्षचरित के आधार पर उद्भावित किये गये हैं। हर्षचरित के वर्णन से ज्ञात होता है कि बाणभट्ट घुमक्कड़ थे। उसके आधार पर द्विवेदीजी ने आत्मकथा का वितान तैयार किया है। आत्मकथा मे बाण का विशुद्ध चरित्र चित्रित हुआ है। वे बहुत ही भोले हैं। वे निपुणिका का गूढ़ प्रेम नही समझ पाते। वे स्त्री को देवता मानते हैं। बाण ने कादम्बरी मे विशुद्ध प्रेम का अङ्कन किया है। उनकी दृष्टि मे यह प्रेम अनुपम आनन्द की सर्जना करता है, भूलोक तथा स्वर्लोक को एक धरातल पर स्थापित करता है। बाणकृत यह चित्रण द्विवेदी जी की आधार शिला है। इसके आधार पर बाणभट्ट का जीवन चित्रित किया गया है और उसके नानारूप प्रतानों की योजना की गयी है। आत्मकथा में बाण की मानवलोकदुर्लभ पवित्रता समुद्भासित होती है और उनके संयम का सौरभ मन को बरबस खीच लेता है।

भाषा, शैली, अलङ्कारों की योजना, रसनिर्वाह, सौन्दर्यनिरूपण तथा प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण आदि के परिसर में द्विवेदी जी बाण का अनुसरण करते हैं। बाण की भाँति डा० द्विवेदी सुन्दर शब्दों का चयन करते हैं और बीच-बीच मे अनेक सुन्दर वाक्यों की योजना करते रहते हैं। बाण उत्प्रेक्षा अलङ्कार का अत्यधिक प्रयोग करते हैं। उनकी उत्प्रेक्षायें विषयानुकूल हैं। द्विवेदी जी ने भी उत्प्रेक्षा का सुन्दर निर्वाह किया है। बाण शारीरिक सौन्दर्य का कमनीय निरूपण करते है। वे प्रत्येक अङ्ग की विशिष्टता का सञ्चय करते हैं। आवश्यक उपादानो की संघट से सौन्दर्य का चित्र सम्भूषित किया गया है। द्विवेदी जी इस सरणि का अवलम्बन करते हैं। द्विवेदीजी ने बाण की भाँति अनेक स्थलों पर प्राकृतिक दृश्यो का चित्रण किया है। वे प्रत्येक बार नव-नव कल्पनाओ का सम्भार जुटाते हैं। भावों की सुकुमार वीथिकाओं को सजाने मे द्विवेदी जी बाण की भाँति कुशल हैं।

आत्मकथा में वस्तु परिस्थिति और घटना का वर्णन कादम्बरी की अनुकृति पर किया गया है पात्रो की योजना मे भी डा० द्विवेदी बाण की कादम्बरी से

है। कादम्बरी के 'जरद्द्रविडधार्मिक' के वर्णन के आधार पर द्रविड़साधु के वर्णन की योजना की गयी है। सुचरिता की कथा महाश्वेता की कथा की अनुकृति पर उपनिबद्ध हुई है।

प्रेमनिरूपण की दृष्टि से भी डा० द्विवेदी पर बाण का प्रभाव देखा जा सकता है। जिस प्रकार बाण प्रेम के क्षेत्र में त्याग की महत्ता स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार द्विवेदी जी भी।

बाण की भाषा और शैली से द्विवेदी जी अत्यधिक प्रभावित हैं। आत्मकथा में अनेक स्थलों पर बाण के वर्णनों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। बाणभट्ट की 'आत्मकथा' में बाण के कुछ श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं।[1]

'उनके घर की शुक सारिकाएँ भी विशुद्ध मन्त्रोच्चारण कर लेती थीं, और यद्यपि लोगों को यह बात अतिशयोक्ति जँचेगी; परन्तु यह सत्य है कि मेरे पूर्वजों के विद्यार्थी उनकी शुक-सारिकाओं से डरते रहते थे। वे पद-पद पर उनके अशुद्ध पाठों को सुधार दिया करती थीं।'[2]

उपर्युक्त वर्णन बाण के अधोलिखित श्लोक के आधार पर उपनिबद्ध हुआ है—

'जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः॥'[3]

जिनके घर पर समस्त वाङ्मय का अभ्यास किये हुये, सारिकाओं के साथ पिंजड़ों में स्थित शुकों के द्वारा पद-पद पर टोके जाते हुये बटु शङ्कित होकर यजुर्वेद और सामवेद का पाठ करते थे।

'यदि मैं कहूँ कि सरस्वती स्वयं आकर अपने पाणिपल्लवों से मेरे पितृदेव के होमकालीन श्रमसीकरों को पोंछा करती थीं, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी'[4]

द्विवेदी जी ने उपर्युक्त वाक्य की रचना कादम्बरी के एक श्लोक के आधार पर की है।[5] श्लोक का अर्थ अधोलिखित है—

जिनके होमश्रम के कारण उत्पन्न स्वेद-बिन्दुओं को सरस्वती अपने करकमलों से पोंछती थी और जिनके यश की किरणों से सातों लोक श्वेत हो गये थे, उनसे बाण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

---

१. बा० आ०, पृ० १, ६८, १४७, १४८
२. वही, पृ० १
३. का०, पृ० ७
४. बा० आ०, पृ० १
५. का०, पृ० ६

आत्मकथा का अधोलिखित वर्णन कादम्बरी के वर्णन के आधार पर किया गया है—

'साथ-साथ चलने वाली परिचारिकाओं के चरणविघट्टनजनित नूपुरो के क्वरान से दिगन्त शब्दायमान हो उठा था। वेगपूर्वक भुजलताओं के उत्तोलन के कारण मणिजटित चूड़ियाँ चंचल हो उठी थीं। इससे बाहुलताएँ भी झनकार करने लगी थीं। उनकी ऊपर उठी हथेलियों को देखने से ऐसा लगता था, मानो आकाश-गंगा में खिली हुई कमलिनियाँ हवा के झोंको से विलुलित होकर नीचे उतर आई हों। भीड़ के संघर्ष से उनके कानों के पल्लव खिसक रहे थे। वे एक-दूसरी से टकरा जाती थीं। इस प्रकार एक का केयूर दूसरी के चादर में लग कर उसे खरोंच डालता था। पसीने से घुल-घुलकर अंगराग उनके चीनांशुकों को रँग रहे थे। साथ मे नर्तकियो का भी एक दल जा रहा था। उनके हँसते हुये वदनों को देख कर ऐसा भान होता था कि कोई प्रस्फुटित कुमुदों का वन चला जा रहा है। उनकी चंचल हारलताएँ जोर-जोर से हिलती हुई उनके वक्षभाग से टकरा रही थीं, खुली हुई केश-राशि सिन्दूर-बिन्दु पर अटक जाती थी। निरन्तर गुलाल और अबीर के उड़ते रहने के कारण उनके केश पिंग वर्ण के हो उठे थे और उनके मनोरम गान से सारा राजमार्ग प्रतिध्वनित हो उठा था।

मैं नगर के एक चौराहे पर खड़ा-खड़ा मुग्ध भाव से यह दृश्य देख रहा था। इसका सबसे मजेदार हिस्सा वह था, जिसमें राजमहल में रहने वाले बौने, कुबड़े, नपुंसक और मूर्ख लोग उद्धत नृत्य से विह्वल होकर भागे जा रहे थे। एक वृद्ध कंचुकी की दशा बड़ी दयनीय हो गई थी। उसके गले में एक नृत्य परायण रमणी का उत्तरीय वस्त्र अटक गया था और खींच-तान में पड़ा हुआ बेचारा बूढा उपहास का पात्र बन गया था।'[१]

कादम्बरी के वर्णन का अर्थ अधोलिखित है—राजा के साथ अन्तःपुरिकायें थीं। उनके चरणक्षेप के कारण रणितनूपुरों से दिशायें मुखरित थीं। वेग से (भुजाओं को) उठाने के कारण हिलते हुये मणिवलयों से भुजलतायें शब्दायमान थीं। उनकी ऊपर उठी हुई हथेलियों से ऐसा लगता था, मानो पवन के झोंको से गिरी हुई आकाशगङ्गा की कमलिनियाँ हों। उनके कर्णपल्लव गिर रहे थे और पददलित हो रहे थे। उनके उत्तरीय वस्त्र एक-दूसरे के अङ्गदों के अग्रभागो से विद्ध होकर फट रहे थे। पसीने की बूँदों से क्षालित अङ्गराग से चीनांशुक रञ्जित हो रहे थे। उनके तिलक कुछ ही अवशिष्ट थे। विलासपूर्वक गमन करती हुई

१ बा० आ० पृ० १४

वारविलासिनियों के हास से विकसित कुमुदवन की छटा प्रकट हो रही थी। वेगपूर्वक आस्फालन से गिरती हुई चञ्चल हारलताओं से कुचतट ताड़ित हो रहे थे। सिन्दूरतिलकों पर अलकपंक्तियाँ लुण्ठित हो रही थीं। विकीर्ण पटवास की चूर्ण-राशि से केशपाश पिञ्जरित हो रहे थे। विशेष नृत्य से विकल गूँगे, कुब्डे, किरात, बौने, बहरे तथा जड़ लोग आगे-आगे चल रहे थे। वृद्ध कञ्चुकियों की गर्दनों में फँसे हुये उत्तरीयांशुकों को खींचने से उनकी विडम्बना हो रही थी।'[1]

'मुझे सबसे दयनीय, चन्द्रमा में का वह मृग लगा। ऐसा जान पड़ता था कि वह अभागा प्यास का मारा इस अमृत सरोवर में आया था और अब अमृत-पंक में धँसा हुआ कर्त्तव्यमूढ बना जकड़ा-सा खड़ा था।'[2]

आत्मकथा का उपर्युक्त वर्णन कादम्बरी के 'हिमकरसरसि विकचपुण्डरीक-सिते चन्द्रिकाजलपानलोभादवतीर्णो निश्चलमूर्त्तिरमृतपङ्कलग्न इवा-दृश्यत हरिणः।'[3] का प्रायः भावार्थ ही है। कादम्बरी के उपरिलिखित वाक्य का अर्थ है—खिले हुये श्वेतकमलों वाले, चन्द्रमारूपी सरोवर में चन्द्रिकारूपी जल को पीने के लोभ से उतरा हुआ मृग निश्चलमूर्ति वाला दिखायी पड़ा, मानो अमृतपङ्क में फँस गया हो।

'पर उसका वेश देखकर मुझे ऐसा लगा, मानो विषधरों से लिपटी हुई कोई चन्दन-लता हो'[4] पर कादम्बरी के 'सन्निहितविषधरेव चन्दनलताभीषण-रमणीयाकृतिः'[5] (सर्पों से युक्त चन्दन-लता की भाँति भीषण और रमणीय आकृति वाली) का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी पड़ रहा है।

'वैसे उसका सारा शरीर आगुल्फ लम्बे नीले कंचुक से ढँका हुआ था और मस्तक पर लाल उत्तरीय बँधा हुआ था। पर इससे उसकी शोभा में लेशमात्र भी कमी नहीं आई थी, अपितु वह सन्ध्या समय की लाल सूर्य-किरणों द्वारा आच्छादित नीलकमल की वनस्थली की भाँति रमणीय हो गई थी।'[6] पर बाण के अधोलिखित वाक्यांश की छाया स्पष्ट है—

'आगुल्फावलम्बिना नीलकञ्चुकेनाच्छन्नशरीराम्, उपरिरक्तांशुक-विरचितावगुण्ठनां नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसन्ध्यातपाम्'[7]

अर्थात् उसका शरीर गुल्फ तक लटकने वाले नीले कञ्चुक से आच्छादित था।

---

१. का०, पृ० २२४-२२५
२. बा० आ०, पृ० १८
३. का०, पृ० १५७
४. बा० आ०, पृ० २२
५. का०, पृ० २३
६. बा० आ०, पृ० २२
७. का०, पृ० ३१-३२

शिर पर लाल अंशुक का घूँघट था। अतः वह सन्ध्याकालिक नीलकमलस्थली की भाँति लग रही थी।

अधोलिखित वर्णन बाणकृत महाश्वेतावर्णन के आधार पर किया गया है—

'उसके सारे शरीर से स्वच्छ कान्ति प्रवाहित हो रही थी। अत्यन्त धवल प्रभापुंज से उसका शरीर एक प्रकार ढका हुआ-सा ही जान पड़ता था, मानो वह स्फटिक-गृह में आवद्ध हो, या दुग्धसलिल में निमग्न हो, या विमल चीनांशुक से समावृत हो, या दर्पण में प्रतिबिम्बित हो, या शरत्कालीन मेघपुंज में अन्तरित चन्द्रकला हो।....मेरे मन में बार-बार यह प्रश्न उठता रहा कि इतनी पवित्र रूप-राशि किस प्रकार इस कलुषधरित्री में सम्भव हुई? निश्चय ही यह धर्म के हृदय से निकली हुई है। मानो विधाता ने शंख से खोदकर, मुक्ता से खींचकर, मृणाल से सँवारकर, चन्द्रकिरणों के कूर्चक से प्रक्षालित कर, सुधाचूर्ण से धोकर, रजतरस से पोंछकर, कुटज, कुन्द और सिन्धुवार पुष्पों की धवल कान्ति से सजाकर ही इसका निर्माण किया था। अहा, यह कैसी अपूर्व विचित्रता है! यहाँ क्या मुनियों की ध्यान-सम्पत्ति ही पुंजीभूत होकर वर्तमान है, या रावण के स्पर्श-भय से भागी हुई कैलास पर्वत की शोभा ही स्त्री-विग्रह धारण करके विराज रही है, या बलराम की दीप्ति ही उनकी मत्तावस्था में उन्हें छोड़कर भाग आई है, या मन्दाकिनी की धारा ने ही यह पवित्ररूप ग्रहण किया है।'[1]

बाण के वर्णन का अर्थ अधोलिखित है—

'उसका शरीर धवल प्रभा से व्याप्त था, मानो वह स्फटिक गृह में प्रविष्ट हो, मानो दुग्धसलिल में निमग्न हो, मानो निर्मल चीनांशुक से आच्छादित हो, मानो दर्पण में प्रतिबिम्बित हो, मानो शरत्कालीन मेघसमूह से आवृत हो।....मानो मुनियों की ध्यानसम्पत्ति ने देह धारण कर लिया हो....मानो कैलास की शोभा रावण से उन्मीलित होने के कारण गिर पड़ी हो....मानो बलराम के देह की प्रभा मधुमद से उत्पन्न चक्कर के आयास से विगलित हो गयी हो....मानो धर्म के हृदय से निकली हो, मानो शङ्ख से उत्कीर्ण की गयी हो, मानो मुक्ताफल से निकाली गयी हो, मानो उसके अवयव मृणालों से निर्मित किये गये हों....मानो चन्द्रकिरणों के कूर्चक से प्रक्षालित की गई हो....मानो वर्णसुधा की छटा से लिप्त हो....मानो रजतरस से पोंछी गयी हो....मानो कुटज, कुन्द, सिन्धुवार पुष्पों की कान्ति से उल्लासित हो।'[2]

---

१. बा० आ०, पृ० २६-२७ २. का०, पृ० ३८८-३९२

'देखते-देखते चन्द्रमा पद्म-मधु से रँगे हुये वृद्ध कलहंस की भाँति आकाश-गंगा के पुलिन से उदास भाव से पश्चिम जलधि के तट पर उतर गया। समस्त दिङ्मण्डल वृद्ध रंकुमृग की रोमराजि के समान पांडुर हो उठा। हाथी के रक्त से रंजित सिंह के सटाभार की भाँति किंवा लोहित वर्ण लाक्षारस के सूत्र के समान सूर्य-किरणें आकाशरूपी वन-भूमि से नक्षत्ररूपी फूलों को इस प्रकार झाड़ देने लगीं, मानो वे पद्मरागमणि की शलाकाओं से बनी हुई झाड़ू हों। तारिकायें लुप्त होने लगीं। दो-एक जो अब भी बच रही थीं, वे पश्चिमाकाश रूपी तनुतट पर सोतियों के उन्मुक्त सूत्र से बिखरे हुए मुक्तासटल की भाँति दिख रही थीं। पूर्व की ओर प्रकाश आविर्भूत होने लगा। धीरे-धीरे शिशिरबिन्दु को वहन करता हुआ, पद्मवन को प्रकम्पित करता हुआ, परिश्रान्त शबर रमणियों के घर्म-बिन्दु को विलुप्त करता हुआ, वन्य-महिषों के फेनबिन्दु से सिंचा हुआ, कम्पमान पल्लवों और लतातरुओं को नृत्य की शिक्षा देता हुआ, प्रस्फुटित पद्मों का मधु बरसाकर, पुष्प-सौरभ से भ्रमरों को सन्तुष्ट करके मन्द-मन्द संचारी प्रभात-वात बहने लगा।'[1]

आत्मकथा का उपर्युक्त उद्धरण कादम्बरी के प्रभातवर्णन का प्रायः अनुवाद है। कादम्बरी के वर्णन का अर्थ है—'कमलिनी के मधु से रञ्जित पंखों वाले वृद्ध हंस की भाँति चन्द्रमा मन्दाकिनी के तट से पश्चिमसागर के तट पर उतरा। दिशायें परिणत रङ्कुमृग के रोम की भांति पाण्डु तथा विशाल हो गयीं। हाथी के रक्त से लाल सिंह-सटा की भाँति लोहित, तप्त लाख के तन्तुओं की भाँति श्वेतरक्त, सूर्य की विस्तृत किरणें, जो पद्मराग की शलाकाओं से बनी झाड़ू प्रतीत हो रही थीं, आकाशकुट्टिम के पुष्पसमूहरूपी तारागण को झाड़ने लगीं।...... तुषार-बिन्दुओं से युक्त, कमलवन को कम्पित करनेवाला, रति के कारण खिन्न शबरकामिनियों के स्वेद-बिन्दुओं को दूर करनेवाला, वनमहिषों की जुगालों के फेनबिन्दुओं का वहन करनेवाला, हिलते हुये पल्लवों वाली लताओं को लास्य का उपदेश देने में रत, खिलते हुये कमल-समूह के मधुशीकरों की वर्षा करने वाला, पुष्पों के सौरभ से भ्रमरों को तृप्त करने वाला, रात्रि की समाप्ति के कारण शीतल, मन्द-मन्द सञ्चरण करने वाला प्रभातकालीन पवन बहने लगा।'[2]

कादम्बरी के 'जरद्द्रविडधार्मिक' के वर्णन के आधार पर डा० द्विवेदी ने द्रविड़साधु का वर्णन किया है—'वृद्ध काफी सरस जान पड़ते थे। उन्होंने पुजारी का वर्णन बड़ी रसमयी भाषा में किया। बताया कि पुजारी कोई द्रविड़ साधु हैं। उनके काले-काले शरीर में शिराएँ इस प्रकार फूटी दिखाई देती हैं, मानो उन्हें

---

१. बा० आ०, पृ० ३४ २. का०, पृ० ७७—८०

जला हुआ खम्भा समझकर गिरगिट चढ़े हुये हों। सारा शरीर घाव के दागों से इस प्रकार भरा है, मानो लक्ष्मी देवी ने शुभ लक्षणों को उस देह से काट-काट कर अलग कर लिया हो। वे काफी शौकीन भी हैं। यद्यपि वृद्ध हैं, तो भी कानों में ओण्ड्र पुष्प का लटकना नहीं भूलते। वे भक्त भी हैं, क्योंकि चण्डी-मन्दिर की चौखट पर सिर ठुकराते-ठुकराते उनके ललाट में अर्बुद हो गया है। वे तान्त्रिक भी हैं; प्रायः ही वृद्धा तीर्थयात्रिणियों पर वशीकरण चूर्ण फेंका करते हैं। वे प्रयोग कुशल भी हैं, क्योंकि एकबार गुप्त स्थानों की निधि दिखाने वाला कज्जल लगाकर आंख खो चुके हैं। वे चिकित्सक भी हैं, अपने आगे वाले लम्बे ऊँचे दांतों को समान बनाने के उद्योग में अन्य दांतों को खो चुके हैं; पर वे ऊँचे दांत जहाँ के तहाँ हैं। वे विनोदी भी हैं, क्योंकि बालकों के पीछे एक बार ईंट लेकर दौड़ पड़े थे और लुड़ककर गिर गये थे, जिससे होंठ कुछ कट गये हैं। उनकी विद्या का भण्डार अक्षय है। समस्त दक्षिणापथ की सम्पत्ति प्राप्त करने की आशा से कपाल में तिलक धारण करते हैं। हरे बबरैंड़ के पत्तों के रस में श्मशान का कोयला पीसकर उससे एक सीपी को रँग रखा है। उनका विश्वास है कि उससे देखने-मात्र से धनिकों के हृदय में उच्चाटन होता है और वे अपनी सम्पत्ति छोड़ कर चल देते हैं। माया-वशीकरण के ऊपर भी उनका विश्वास है। इस कार्य के लिए उन्होंने तालपत्र की पोथी पर महावर के रंग से एक लाख बार 'हुँ फट्' लिख रखा है और उसे गुग्गुलु धूप से धूपित किया है। उनका विश्वास है कि इस पोथी को देखकर रमणियाँ उनकी चेरी हो रहेंगी।[1]

बाणकृत 'जरद्द्रविडधार्मिक' का वर्णन अवलोकनीय है—

'उसका शरीर स्थूल शिराओं के कारण गवाक्षों से युक्त प्रतीत हो रहा था, मानो जले हुये ठूँठ की आशंका से गोधा, गोधिका तथा गिरगिट चढ़े हों। उसका सारा शरीर विस्फोट के व्रण-बिन्दुओं से रंग-बिरंगा हो गया था, मानो अलक्ष्मी के द्वारा निकाले हुये शुभ लक्षणों के स्थान हों।......अम्बिका के चरणों पर गिरने के कारण काले हुये ललाट पर अर्बुद बढ़ रहा था।......प्रतिदिन कड़वी लौकी के स्वेद से दन्तुरता की चिकित्सा करता था।......दुःशिक्षित श्रमण के आदेश से धारण किये गये तिलक से विभव की आशा करता था। वह हरे पत्तों के रस से युक्त कोयले की स्याही से मलिन सीपी लिये रहता था। उसने पट्टिका पर दुर्गा-स्तोत्र लिख रखा था। उसके पास धूम से रञ्जित अलक्तकाक्षरों वाली, तालपत्र पर लिखित, इन्द्रजाल, तन्त्र-मन्त्र की पुस्तिका थी।...अन्य देशों से आई हुई और

१. बा० आ० पृ० ३५—३६

वहाँ ठहरी हुई वृद्ध संन्यासिनियों पर बहुत बार स्त्रीवशीकरणचूर्ण का प्रयोग कर चुका था।……अपराध किये हुये बालक के भागने के कारण उत्पन्न क्रोध मे बालक के पीछे दौड़ने से लड़खड़ा जाने के कारण अधोमुख होकर गिरने से शिर:कपालके भग्न हो जाने से ग्रीवा टेढ़ी हो गयी थी।'[1]

'ललाट के कुंकुम की गौर कान्ति से वलयित वे काश्मीर-किशोरियों-सी दिख रही थीं। नृत्य के नाना करणों में जब वे अपनी बाहुलता का आकाश मे उत्क्षेप करती थी, तो ऐसा लगता था कि उनके समुत्सुक वलय उछलकर सूर्य-मण्डल को बन्दी बना लेंगे। उनकी कनकमेखला की किंकिणियों से उलझी हुई कुरण्टक-माला उनके मध्यदेश को घेरती हुई ऐसी शोभित हो रही थी, मानो रागाग्नि ही प्रदीप्त होकर उन्हें वलयित किये है।…वे मद को भी मदमत्त बना रही थीं, राग को भी रंग रही थीं, आनन्द को आनन्दित कर रही थीं, नृत्य को भी नचा रही थी और उत्सव को भी उत्सुक कर रही थीं।[2]

आत्मकथा का उपर्युक्त वर्णन बाण के अधोलिखित वर्णन के आधार पर किया गया है—

'वे वलयावलियों के कारण वाचाल, उत्क्षिप्त बाहुलताओं से मानो सूर्य का आह्वान कर रही थीं। कुंकुम से चर्चित होने के कारण सुन्दर शरीरों वाली वे किशोरियों-सी उछल रही थीं। उन्होंने नितम्बों तक लटकने वाली कुरण्टक की बड़ी-बड़ी शिरोमालाओं को धारण किया था, मानो वे रागाग्नि से प्रदीप्त हों।…वे मद को भी मानो मत्त कर रही थीं, राग को भी मानो रञ्जित कर रही थीं, आनन्द को भी मानो आनन्दित कर रही थी, नृत्य को भी मानो नचा रही थीं।'[3]

आत्मकथा का अधोलिखित वर्णन बाणकृत वर्णन का प्राय: अनुवाद है—

'अहा, यहाँ गगन तल ही जल रूप में मानो अवतरित हो गया है, तुषार-गिरि ही द्रवीभूत होकर मानो वर्तमान है, चन्द्रातप ही मानो रसरूप में परिणत हो गया है, शिव का पवित्र स्मित ही मानो जलधारा बन गया है…त्रिभुवन की पुण्य-राशि ही मानो पिघल गई है, शरद्-कालीन मेघमाला ही मानो ठिठक गई है'[4]

बाण का वर्णन अधोऽङ्कित है—

'मानो आकाश का सलिलाकार अवतार है……तुषारगिरि मानो द्रवीभूत हो गया है, चन्द्रातप मानो सलिलरूप में परिणत हो गया है, शिव का अट्टहास मानो

---

१. का०, पृ० ६४०–६४४
२. बा० आ०, पृ० ६२
३. हर्ष०, पृ० १९३–१९४
४. बा० आ०, पृ० १०५

जल बन गया है, त्रिभुवन की पुण्यराशि मानो सरोवर के रूप में स्थित है''''''
शरत्काल का मेघसमूह पिघलकर मानो एक स्थान पर निर्गलित हो गया है।'[1]

'कौन उस दुर्द्धर्ष पराक्रमी यशोवर्मा को नहीं जानता, जिनकी दृढ़मुष्टि मे बँधी हुई तलवार जब मदमत्त हाथियों के कुम्भ-पीठ पर पड़ती थी, तो उसमें स्थूल-स्थूल गजमुक्ताएँ इस प्रकार लग जाती थीं, मानो मुट्ठी बाँधने के जोर से तलवार की धारा ही बड़े-बड़े बिन्दुओं के रूप मे टपकने लगी हो। इस मुक्तालग्न दन्तुर कृपाणधारा ने न जाने कितनी शत्रु-राजलक्ष्मियों को खीच लिया था। जानता हूँ भद्र, अनेकानेक सुभटो के वक्षःस्थल पर बँधे हुये लौहकवचो से अन्धकार हो जाने पर हाथियों की मदधारा के दुर्दिन मे भीगती हुई राजलक्ष्मियाँ जिस यशोवर्मा के पास अभिसारिकाओं की भाँति आती थीं, उस अतुल पराक्रम मौखरि-वीर को मैं जानता हूँ।[2]

आत्मकथा का उपर्युक्त वर्णन बाण के 'यस्य च मदकलकरिकुम्भपीठ-पाटनमचरता'''राजलक्ष्मीः' का भावार्थ ही है। बाणकृत वर्णन है—

'जिनके पास मद के कारण हाथियों के मनोहर गण्डस्थलों को विदीर्ण करने के कारण लगे हुये स्थूल मुक्ताफलों वाली, अतः मानो दृढ़मुट्ठी से निष्पीडन के कारण निर्गत धाराजलबिन्दुओं से दन्तुर हुई कृपाण से खींची जाती हुई, सुभटों के वक्षःस्थलों रूपी कपाटों से वियोजित सहस्रों कवचों रूपी अन्धकार के मध्य में स्थित राज्यलक्ष्मी हाथियों के गण्डस्थलों से गिरे हुये मदजल की वर्षा से उत्पन्न दुर्दिनों वाली युद्धरूपी रात्रियों मे अभिसारिका की भाँति बार-बार आती थी।'[3]

कादम्बरी के 'प्रविश्य च सा नरपतिसहस्रमध्यवर्त्तिनमशनिभय-पुञ्जितकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरणा-जालकान्तरितावयवमिन्द्रायुधसहस्रसञ्छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधर-दिवसम्'[4] के आधार पर अधोलिखित वर्णन किया गया है—

'राजसभा में प्रवेश करके मैंने देखा कि महाराजाधिराज चन्द्रकान्त मणियो से बने हुए एक सुन्दर पर्यक पर बैठे हुए इस प्रकार शोभित हो रहे थे, जैसे वज्र के डर से पुंजित कुल-पर्वतों के बीच मे सुमेरु आसीन हो। नाना भाँति के रत्नमय आभरणों की किरणो से उनका शरीर इस प्रकार अनुरंजित हो रहा था, मानो

१. का०, पृ० ३६९–३७०
२. बा० आ०, पृ० १२१
३. का०, पृ० १६
४. वही, पृ० २५

सहस्र-सहस्र इन्द्रधनुषों से आच्छादित व्योममण्डल में सरसजलधर सुशोभित हो रहा हो।'[1]

कादम्बरी के 'प्रविश्य'''जलधरदिवसम्' का अर्थ है—'शूद्रक सहस्रों राजाओं के मध्य में स्थित थे, मानो वज्र के भय से एकत्र हुए कुलशैलों के मध्य में सुमेरु हो। अनेक रत्नाभरणों की किरणों से उनके अवयव आवृत थे, मानो सहस्रों इन्द्रायुधों से आच्छादित आठों दिग्भागों वाला दिवस हो।'

कादम्बरी के 'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन, नवयौवनेन पदम्।'[2] का अधोलिखित वाक्य प्रायः अनुवाद है—

'जिस प्रकार वसन्तकाल में मधुमास, मधुमास में पल्लवराजि, पल्लवराजि में पुष्पसंभार, पुष्पसंभार में भ्रमरावली और भ्रमरावली में मदावस्था बिना बुलाये आ जाती है, उसी प्रकार मेरे शरीर में यौवन का पदार्पण हुआ।'[3]

बाण के वाक्य 'क्रमेण'''पदम्' का अनुवाद है—

'वसन्त में मधुमास की भाँति, मधुमास में नवपल्लव की भाँति, नवपल्लव में कुसुम की भाँति, कुसुम में मधुकर की भाँति, मधुकर में मद की भाँति नवयौवन का मेरे शरीर में क्रमशः पदार्पण हुआ।'

आत्मकथा के अधोलिखित वर्णन पर बाण का प्रभाव देखा जा सकता है—

'मैं कुछ माँगती हुई-सी, शरणागत होती हुई-सी, स्तंभिता-चित्रलिखिता-उत्कीर्णा-संयता-मूर्च्छिता-विधृता की भाँति, निरुद्धचेष्ट हो गई।'''मैं ठीक नहीं बता सकती कि उन्हें इस प्रकार देखने के लिये किस बात ने मुझे प्रेरित किया—उनकी सौन्दर्य-समृद्धि ने, मेरे चंचल चित्त ने, मेरे नवयौवन ने, अनुराग ने या अन्य किसी बात ने?'[4]

बाणकृत वर्णन का अनुवाद है—

'कुछ याचना करती हुई-सी, 'तुम्हारे अधीन हूँ' यह कहती हुई-सी''''''सर्वात्मना (उनमें) अनुप्रविष्ट होती हुई-सी, तन्मयता को प्राप्त करने की इच्छा करती हुई-सी'''स्तम्भित-सी, चित्रित-सी, उत्कीर्ण-सी, संयत-सी, मूर्च्छित-सी,

---

१. बा० आ०, पृ० १७८
२. का०, पृ० ४१२
३. बा० आ०, पृ० २१३
४. वही, पृ० २१७

किसी के द्वारा पकड़ी हुई-सी'''क्या उनकी रूपसम्पत्ति से, क्या चित्त से, क्या काम से, क्या अभिनव यौवन से, अथवा क्या अनुराग से उपदिष्ट होती हुई, अथवा क्या अन्य ही किसी प्रकार से (उपदिष्ट होती हुई) उसे कैसे-कैसे दीर्घकाल तक देखा, यह मैं भी नहीं जानती।'[1]

इन वर्णनों के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी बाण का प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

---

१. का०, पृ० ३२३-३२४

पोद्दार रामावतार अरुण

पोद्दार रामावतार अरुण के द्वारा विरचित बाणाम्बरी एक सुन्दर काव्य है। रुण ने कादम्बरी की अनुकृति पर बाणाम्बरी नाम रखा है। इसकी भाषा वाङ्मय है। इसमें कवि ने बाण के जीवन का चित्रण किया है। बाण ने र्षचरित में अपनी कथा दी है। पोद्दार जी ने उसके आधार पर अपने काव्य ा ताना-बाना बुना है और अपनी कल्पना के रंग से उसे सजाया है।

चित्रभानु का वर्णन बड़ी कमनीयता से प्रस्तुत किया गया है—

'दूर-दूर से शास्त्र-पथिक जब आया करते
जीवन-दर्शन-घन जन-मन पर छाया करते
भानु-मुख-श्री-स्वेद पोंछती स्वयं भारती'[1]

कादम्बरी में उल्लेख किया गया है कि सरस्वती अपने कर-कमलों से चित्रभानु े स्वेद-बिन्दुओं को पोंछती थी—

'सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः।'[2]

बाण को कृष्ण का पत्र प्राप्त होता है। वे उस पर विचार करते हैं—

चाटुकार मैं नहीं, न कुछ भी लोभ कहीं है
जो स्वतंत्रता यहाँ मुझे, वह वहाँ नहीं है
मेरे गृह ने राजभवन को कभी न देखा
आश्रित कभी न रही किसी दिन जीवन-रेखा
मैं एकान्तबिपिन का कोकिल गानेवाला
गरज-बरस कर स्वतः जलद मैं छानेवाला
राजकुलों ने मेरा क्या उपकार किया है?
स्थाण्वीश्वरपति ने न कभी सत्कार किया है'[3]

हर्षचरित मे इसी प्रकार का निरूपण प्राप्त होता है—

'क्या करूँ? मुझे राजा ने अन्यथा समझा है। अकारणबन्धु कृष्ण ने इस कार सन्देश भेजा है। राजसेवा निकृष्ट है। नौकरी विषम है। महान् राजकुल

---

१ बाणाम्बरी, प्रथम सर्ग, पृ० २ ३. बाणाम्बरी, दशम सर्ग, पृ० १६६
का०, पृ० ६

बहुत गम्भीर है। यहाँ पूर्वजों से प्रवर्तित मेरी प्रीति नहीं है, वंश-परम्परा में इ महत्व नहीं है, पहले का कोई उपकार नहीं है, जिसकी स्मृति से अनुरोध हो।'

बाणभट्ट प्रास्थानिक मन्त्रों का जप करके और नैचिकी धेनु की प्रदक्षि करके प्रस्थान करते हैं—

'प्रास्थानिक सूक्तों-मंत्रों से सिक्त वदन यों
अश्वमेध-आरभ-काल श्री रघु का मन ज्यों
कर प्रदक्षिणा प्राङ्मुखी नैचिकी धेनु की,
झुककर पूजा की कवि ने उडु-चरण-रेणु की
आशीर्वाद लिये आगत गुरुजन-परिजन से
किया ध्यान नक्षत्र-देवताओं का, मन से
गोबर-लिपित पवित्राङ्गन-कलशी-दर्शन कर'[२]

हर्षचरित के वर्णन से ज्ञात होता है कि बाण ने प्रातःकाल स्नान किया। धोये हुए श्वेत दुकूल वस्त्र को धारण किया तथा अक्षमाला ली। उन्होंने प्रास्था सूक्तों तथा मन्त्रपदों का बहुत बार आवर्तन किया और प्राङ्मुखी नैचिकी गाय प्रदक्षिणा की। वे हरे गोबर से लिपे आँगन में रखे गये पूर्ण कलश को देखते प्रीतिकूट से निकले।[३]

हर्षवर्धन, बाण को देखकर कहते हैं—

'भूपति-सुदृष्टि फिर गई उधर, इतना कहकर
मालवकुमार से बोले फिर कुछ चुप रहकर—
वात्स्यायनवंशी युवा बाण भारी भुजंग
कलुषित कर्मों में केवल दूषित राग-रंग'[४]

पोद्दार जी ने यहाँ भी हर्षचरित के वर्णन का आश्रय लिया है।

हर्षवर्धन ने बाण को देखकर कहा था कि मैं इसे तब तक नहीं देखूँगा, तक इस पर कृपा नहीं करूँगा। उन्होंने कहा था कि बाण महान् भुजङ्ग है

हर्ष का वचन सुनकर बाण का तेज जाग उठता है। वे कहते हैं—

'मैं व्यक्ति नहीं साधारण, वात्स्यायन-रवि हूँ
दर्शन-ज्ञाता कोमलता का कुसुमित कवि हूँ

---

१. हर्ष०, पृ० ८४
२. बाणाम्बरी, दशम सर्ग, पृ० २०१
३. हर्ष०, पृ० ८४-८५
४. बाणाम्बरी, एकादश सर्ग, पृ०
५. हर्ष०, पृ० ११४–११५

शास्त्रानुरक्त मैं सांगवेद-पाठक प्रबुद्ध
तपसी-गौरव-गर्वित शोणित शुद्धातिशुद्ध
वैदिक श्री-कुल में जन्म हुआ मेरा राजन् !
नियमित गृहस्थ कर्मोच्च सोमपायी ब्राह्मण
सच कहता हूँ सम्राट् कि मैं हूँ निष्कलंक
मेरे प्राणों में नहीं कहीं भी पाप-पंक
नूतन वय में किसमें न चपलताएँ होतीं ?'[1]

यहाँ हर्षचरित के वर्णन का अनुकरण किया गया है। बाणभट्ट कहते हैं कि मैं ब्राह्मण हूँ और सोमपान करने वाले वात्स्यायनों के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे उपनयन आदि संस्कार उचित समय पर किये गये हैं। मैंने अङ्गों के साथ वेदों को पढ़ा है। मैं विवाह के समय से गृहस्थ हूँ। मेरा शैशव दोनों लोकों का विरोध न करने वाली चपलताओं से शून्य नहीं था।[2]

अरुण जी ने हर्षचरित के आधार पर बाण के युग में प्रचलित अनेक शैलियों और बाण के काव्यविषयक सिद्धान्त का निरूपण किया है—

'उदीच्य जनों में श्लेष-प्रधान शैली,
प्रतीची में अर्थपूर्ण कथा-वस्तु
दाक्षिणात्य में उत्प्रेक्षा या कल्पना की उड़ान

और

प्राची में शब्द-संघटन की विशेषताएँ हैं।
मेरी दृष्टि में विषय की नवीनता,
उत्तम स्वभावोक्ति और सहज श्लेष,
सामासिक शब्द-योजना और स्फुट रस से ही
उत्कलिका, पूर्णक और आविद्ध शैली में
संभव है प्रणयन नव काव्य का।'[3]

हर्षचरित में उल्लिखित है—

'श्लेषप्राय उदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः॥

---

१. बाणाम्बरी, एकादश सर्ग, पृ० २१६–२१७
२. हर्ष०, पृ० ११५
३. बाणाम्बरी, त्रयोदश सर्ग, पृ० २८३

बहुत गम्भीर है। वहाँ पूर्वजों से प्रवर्तित मेरी प्रीति नहीं है, वंश-परम्परा से प्र पहुँच नहीं है, पहले का कोई उपकार नहीं है, जिसकी स्मृति से अनुरोध हो।'[1]

बाणभट्ट प्रास्थानिक मन्त्रों का जप करके और नैचिकी धेनु की प्रदक्षि करके प्रस्थान करते हैं—

'प्रास्थानिक सूत्रों-मत्रों से सिक्त वदन यों
अश्वमेध-आरंभ-काल श्री रघु का मन ज्यों
कर प्रदक्षिणा प्राङ्मुखी नैचिकी धेनु की,
झुककर पूजा की कवि ने उडु-चरण-रेणु की
आशीर्वाद लिये आगत गुरुजन-परिजन से
किया ध्यान नक्षत्र-देवताओं का, मन से
गोबर-लिपित पवित्राङ्गन-कलशी-दर्शन कर'[2]

हर्षचरित के वर्णन से ज्ञात होता है कि बाण ने प्रातःकाल स्नान किया। धोये हुए श्वेत दुकूल वस्त्र को धारण किया तथा अक्षमाला ली। उन्होंने प्रास्था सूक्तों तथा मन्त्रपदों का बहुत बार आवर्तन किया और प्राङ्मुखी नैचिकी गाय प्रदक्षिणा की। वे हरे गोबर से लिपे आँगन में रखे गये पूर्ण कलश को देखने प्रीतिकूट से निकले।[3]

हर्षवर्धन, बाण को देखकर कहते हैं—

'भूपति-सुदृष्टि फिर गई उधर, इतना कहकर
मालवकुमार से बोले फिर कुछ चुप रहकर—
वात्स्यायनवंशी युवा बाण भारी भुजंग
कलुषित कर्मों में केवल दूषित राग-रंग'[4]

पोद्दार जी ने यहाँ भी हर्षचरित के वर्णन का आश्रय लिया है।

हर्षवर्धन ने बाण को देखकर कहा था कि मैं इसे तब तक नहीं देखूँगा, तक इस पर कृपा नहीं करूँगा। उन्होंने कहा था कि बाण महान् भुजङ्ग है

हर्ष का वचन सुनकर बाण का तेज जाग उठता है। वे कहते हैं—

'मैं व्यक्ति नहीं साधारण, वात्स्यायन-रवि हूँ
दर्शन-ज्ञाता कोमलता का कुसुमित कवि हूँ

---

१. हर्ष०, पृ० ८४
२. बाणाम्बरी, दशम सर्ग, पृ० २०१
३. हर्ष०, पृ० ८४-८५
४. बाणाम्बरी, एकादश सर्ग, पृ०
५. हर्ष०, पृ० ११४–११५

शास्त्रानुरक्त मैं सांगवेद-पाठक प्रबुद्ध
तपसी-गौरव-गर्वित शोणित शुद्धातिशुद्ध
वैदिक श्री-कुल में जन्म हुआ मेरा राजन् !
नियमित गृहस्थ कर्मोच्च सोमपायी ब्राह्मण
मत्त कहता हूँ सम्राट् कि मैं हूँ निष्कलंक
मेरे प्राणों में नहीं कहीं भी पाप-पंक
नूतन वय में किसमें न चपलताएँ होतीं ?'[1]

यहाँ हर्षचरित के वर्णन का अनुकरण किया गया है। बाणभट्ट कहते हैं कि मैं ब्राह्मण हूँ और सोमपान करने वाले वात्स्यायनों के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे उपनयन आदि संस्कार उचित समय पर किये गये हैं। मैंने अङ्गों के साथ वेदों को पढ़ा है। मैं विवाह के समय से गृहस्थ हूँ। मेरा शैशव दोनों लोकों का विरोध न करने वाली चपलताओं से शून्य नहीं था।[2]

अरुण जी ने हर्षचरित के आधार पर बाण के युग में प्रचलित अनेक शैलियों और बाण के काव्यविषयक सिद्धान्त का निरूपण किया है—

'उदीच्य जनों में श्लेष-प्रधान शैली,
प्रतीची में अर्थपूर्ण कथा-वस्तु
दाक्षिणात्य में उत्प्रेक्षा या कल्पना की उड़ान

और

प्राची में शब्द-संघटन की विशेषताएँ है।
मेरी दृष्टि में विषय की नवीनता,
उत्तम स्वभावोक्ति और सहज श्लेष,
सामासिक शब्द-योजना और स्फुट रस से ही
उत्कलिका, पूर्णक और आविद्ध शैली में
संभव है प्रणयन नव काव्य का।'[3]

हर्षचरित में उल्लिखित है—

'श्लेषप्राय उदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः॥

---

१. बाणाम्बरी, एकादश सर्ग, पृ० २१६–२१७
२. हर्ष०, पृ० ११५
३. बाणाम्बरी, त्रयोदश सर्ग, पृ० २८९

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटोऽक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥'[1]

तात्पर्य यह है कि उत्तर के कवियों की रचनाओं में श्लेषालङ्कार का बाहुल्य रहता है, पश्चिम के कवियों की रचनाओं मे केवल अर्थ, दाक्षिणात्यो मे उत्प्रेक्षा तथा गौड़ो में अक्षरप्रपञ्च की उपलब्धि होती है। नवीन अर्थ, अग्राम्य स्वभावोक्ति, सरल श्लेष, स्फुट रस तथा ओजोगुणयुक्त पदयोजना—यह सब एकत्र दुर्लभ है।

---

१. हर्ष०, पृ० ५-६

परिशिष्ट—१

कादम्बरी तथा फेअरी क्वीन

सी०एम० रिडिंग ने कादम्बरी के अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि कादम्बरी तथा स्पेन्सर[1] की रचना फेअरी क्वीन की तुलना की जा सकती है।[2] उनका कथन है कि दोनों में कुछ त्रुटियाँ और कुछ विशेषतायें समान रूप से विद्यमान हैं। दोनों में अनुपात की कमी है और दोनों की योजना बहुत विस्तृत है। दैवयोग से दोनों कृतियाँ अपूर्ण हैं।

हम दोनों की विशेषताओं को दृष्टि में रखकर तुलना कर सकते हैं। बाण और स्पेन्सर—दोनों सत्य और सौन्दर्य का प्रतिष्ठापन करना चाहते हैं। बाण हर्षचरित और कादम्बरी में इसकी उद्भावना करते हैं। कादम्बरी का रचना-विधान पवित्रता पर अधिष्ठित है। महाश्वेता तथा पुण्डरीक, कादम्बरी तथा चन्द्रापीड का प्रेमव्यापार जन्मान्तर-व्यापी तथा पावन है। फेअरी क्वीन में पवित्रता (Holiness), संयम या निग्रह (Temperance), चारित्र्य (Chastity), मैत्री (Friendship), न्याय (Justice) आदि का चित्रण किया गया है। यद्यपि भ्रम (Error), अवलेप (Pride) आदि इन शक्तियों को बाधित करते हैं, तथापि अन्त में इन नैतिक शक्तियों का ही उन्नयन होता है। कादम्बरी में भी प्रेम और आनन्द के चरम सोपान पर पहुँचने में अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा है। हर्षचरित में पात्रों का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन आदि का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है। वे न्याय्य सरणि का अनुगमन करते हैं। हर्षचरित में अन्याय का दमन निरूपित किया गया है।

---

1. 'Spenser was born in London about 1552'
   —Legouis & Cazamian : A History of English Literature, p. 268.
2. C. M. Ridding : The Kadambari of Bana, Introduction, p. 20.

दोनों कवियों ने सौन्दर्यमय तथा पवित्र पात्रों और दृश्यों का चित्रण किया है। बाणभट्ट के चित्रण मनुष्य को महनीय मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करते हैं। बाण मनुष्य के उत्थान के विषय में निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। संसार में सत् तथा असत् प्रवृत्तियाँ कार्य करती रहती हैं, अतः दोनों का अङ्कन आवश्यक होता है। सृष्टि के अञ्चल में मानव का उन्नयन परम अभिप्रेत है। सत् के उद्बोधन से ही उन्नयन सम्भव है। दोनों ग्रन्थों में सत् का मण्डन किया गया है। हमारे पार्श्व में संसार में जो कुछ सौन्दर्यमय है, उसका चित्रण अतीव आवश्यक है। कादम्बरी और फेअरी क्वीन में चित्रण की यह प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

फेअरी क्वीन में घटनाओं तथा चरित्रों की विविधता और भिन्न-भिन्न रंग-रूप के प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा के दर्शन होते हैं। कवि ने अपने काव्याङ्गण में इनको ऐसी पटुता से सम्भूषित किया है कि उसका कल्पना-विनिर्मित जगत् स्पष्ट रूप से झलकता है। स्पेन्सर के चित्रण रूढ़ि-ग्रस्त चित्रण नहीं हैं।[1] बाण के चित्रपटों पर भी उनके आदर्शों की नगरी देखी जा सकती है।

हृदय की कोमलता का अभिव्यञ्जन दोनों ग्रन्थों में हुआ है। शैली की चारुता और मधुरता की दृष्टि से भी दोनों में बहुत साम्य है। दोनों में चित्रमयता के गुण विद्यमान हैं। बाण जब किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य का वर्णन करने लगते

---

1. 'The world of faery land is enough to embrace all that was most precious to spenser in his own experience. With its chivalrous combats and its graceful leisure, its tangle of incident and character, its dense forest and glades, and pleasant sunny interspaces, where the smoke rises from the homely cottage or the stream trickles down with a low murmur inviting repose and meditation, it could mirror both the world of his philosophic vision and the real world of Irish country side, of court intrigues, of European politics, of his own loves and friendships. The romantic setting of the faery forest and the idealizing form of allegory are more than a picturesque convention.'

—The Poetical works of Edmund Spenser, Introduction, p 56

..., जो उसके विभिन्न अवयवों का पूरा चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। वे यह जानते हैं कि वर्ण्य के एक पक्ष के निरूपण से उसका सारा आकार दृग्गोचर नहीं होता; वे सभी दृष्टियों से सभी पक्षों का भव्य उन्मीलन करते हैं। इससे उनके काव्य में चित्रमयता का अनन्य सम्पोष हुआ है। शूद्रक, चाण्डालकन्या, जाबालि, चन्द्रापीड, कादम्बरी आदि के चित्र उपन्यस्त कर दिये गये हैं। स्पेन्सर भी बाण की भाँति शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में नदीष्ण हैं।

स्पेन्सर स्त्री के सौन्दर्य की उद्भावना करने के लिये रंगों की योजना करते हैं—

'एक सुरूपा कामिनी गहरे रक्तवर्ण का वस्त्र धारण किये हुए थी। वस्त्र का प्रान्त सुवर्ण तथा बहुमूल्य मोतियों से मण्डित था। वह कुलाह (Persian Mitre) की भाँति एक अलङ्कार शिर पर धारण किये हुए थी, जो मुकुटों से भूषित था। उसको उसके मुक्तहस्त प्रेमियों ने प्रदान किया था। उसका क्रीडाशील घोडा कृत्रिम शोभावाले परिच्छद से आच्छादित था।'[1]

बाणभट्ट भी इसी प्रकार की योजना करते हैं।

स्पेन्सर भवन का वर्णन करते हैं। उसके सर्वाङ्गीण निरूपण के कारण चित्रमयता आ गई है—

'श्रीमण्डित प्रासाद चौकोर ईटों का बना हुआ था। वह चालाकी से चूने के बिना निर्मित किया गया था। उसकी दीवारें ऊँची थीं, किन्तु दृढ़ नहीं थीं और न मोटी थीं। उनके ऊपर सर्वत्र स्वर्णपत्र उद्भासित हो रहा था।

---

1. 'He had a faire companion of his way,
A goodly lady clad in scarlot red,
purfled with gold and pearle of rich assay,
And like a Persian Mitre on her hed
She wore, with crownes and owches garnished,
The which her lauish louers to her gaue;
Her wanton palfrey all was ouerspred
with tinsell trappings'
—The Poetical works of Edmund Spenser, Faerie Queene. p. 10.

वे पवित्रतम आकाश को दीप्ति से लज्जित कर रही थीं। बहुत-से उन्नत अट्ट थे तथा सुरम्य अलिन्द थे। सुन्दर खिड़कियाँ थीं तथा सुखद लतामण्डप थे।'[1]

स्पेन्सर स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं—

'एक ललित वनिता एक गर्दभ पर चढ़ी थी। गर्दभ तुषार से भी अधिक श्वेत था। वनिता तो और भी अधिक श्वेत थी।'[2]

बाण ने भी महाश्वेता की कमनीयता का निरूपण करते हुए उसे बहुत अधिक श्वेत कहा है—

'उसके शरीर की प्रभा अतिविस्तृत थी। वह सभी दिशाओं को आप्लावित कर रही थी। वह प्रलयकाल के दुग्धसागर के प्रवाह की भाँति पाण्डुर थी। वह अतिदीर्घकाल से सञ्चित, सर्वत्र फैलने वाली तपोराशि-सी प्रतीत हो रही थी। वह कैलास पर्वत को मानो अन्य प्रकार से ही धवलित कर रही थी। उसका शरीर अत्यन्त धवल प्रभा से परिवेष्टित था, मानो वह स्फटिक गृह मे स्थित थी, मानो दुग्धसलिल में डूबी हुई थी, मानो निर्मल चीनांशुक से आच्छादित थी, मानो दर्पणतल में प्रतिबिम्बित थी।'[3]

जैसे कादम्बरी में चाण्डालकन्या, महाश्वेता और कादम्बरी का बिम्बग्राही चित्रण हुआ है, उसी प्रकार स्पेन्सर महिषी का वर्णन करते है—

'उसका आनन आकाश की भाँति विमल था। उसमें कोई दोष और कलङ्क नहीं था। उसकी आँखें बहुत प्रकाशमय थीं। उसका ललाट तेजस्वी था। जब वह बोलती थी, तो ऐसा लगता था कि मधु की वर्षा कर रही है। उसके नेत्रच्छदो (eyelids) पर शोभा विलसित हो रही थी। वह बहुत ही सुन्दर थी। वह

---

1. 'A stately pallace built of squared bricke,
Which cunningly was without morter laid,
Whose wals were high, but nothing strong, nor thick,
And golden foile all ouer them displaid,
That purest skye with brightnesse they dismaid :
High lifted vp were many loftie towres,
And goodly galleries farre ouer laid,
Full of faire windowes, and delightfull bowres'
—The Poetical works of Edmund Spenser, Faerie Queene, p. 19.

२ Ibid p 4

३ का०, पृ० २८७–२८८

श्वेत कौशेय-परिधान से अलङ्कृत थी। उसकी जांघें संगमर्मर के दो स्तम्भों की भाँति थीं।[1]

बाण ने जिस प्रकार जाबालि ऋषि का वर्णन किया है, उसी प्रकार स्पेन्सर ने एक वृद्ध तपस्वी का वर्णन किया है—

'वह लम्बी चीर धारण किये हुए था। उसके पैर नंगे थे। उसकी दाढ़ी भूरी थी। वह अपनी मेखला में अपनी पुस्तक लटकाये हुए था। वह गम्भीर प्रतीत हो रहा था। उसकी आँखें पृथिवी की ओर लगी हुई थीं। वह चलता हुआ प्रार्थना करता था और अपने वक्षःस्थल को प्रायः पीटता था।'[2]

इस प्रकार निरूपण करने से यह प्रकट होता है कि यद्यपि दोनों कवि भिन्न-भिन्न काल में और भिन्न-भिन्न देश में उत्पन्न हुए थे, पर उनके वर्णनों में सादृश्य प्राप्त होता है।

---

1. The Poetical works of Edmund spenser, Faerie Queene, p. 83.
2. 'At length they chaunst to meet vpon the way
   An aged Sire, in long blacke weedes yclad,
   His feete all bare, his beard all hoarie gray,
   And by his belt his booke he hanging had;
   Sober he seemde, and very sagely sad,
   And to the ground his eyes were lowly bent,
   Simple in shew, and voyde of malice bad,
   And all the way he prayed, as he went,
   And often knockt his brest, as one that did repent.'
   Ibid., p. 6.

परिशिष्ट—२

बाणभट्ट की सूक्तियाँ

कादम्बरी

अकारणञ्च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं वा विनयस्य । पृ० ३१५

अचिन्त्यो हि महात्मनां प्रभावः । पृ० ५०७

अगुरुष्युपचारपरिग्रहः प्रणयमारोपयति । पृ० ४०५–४०६

अतिकष्टासु दशास्वपि जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां-
वृत्तयः । पृ० १०६

अतिक्रान्तान्यपि हि सङ्कीर्त्यमानानि अनुभवसमां वेदनामुपजनयन्ति-
सुहृज्जनस्य दुःखानि । पृ० ४१३

अतिपिशुनानि चास्यैकान्तनिष्ठुरस्य दैवहतकस्य विलसितानि न क्षमन्ते-
दीर्घकालमव्याजरमणीयं प्रेम । पृ० ५०६

अदुर्लभं हि मरणमध्यवसितम् । पृ० ४९८

अदूरकोपा हि मुनिजनप्रकृतिः । पृ० ४२७

अनेकविधाश्च कर्म्मणां शक्तयः । पृ० ५०७

अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेन-
उपदेशगुणाः । पृ० ३१४

अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः । पृ० ३११

अप्रतिपाद्या हि परस्वता सज्जनविभवानाम् । पृ० ५७९

अमोघफला हि महामुनिसेवा भवति । पृ० १९२–१९३

अहो ! दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् । पृ० ४०७

आत्मेच्छया न शक्यमुच्छ्वसितुमपि । पृ० ५०९

आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रजातानि शुभानि निमित्तानि । पृ० २०१

आशया हि किमिव न क्रियते । पृ० ४९८

आश्चर्य्यातिशययुक्ताश्च तपःसिद्धयः । पृ० ५०७

कालो हि गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सर्वथा । पृ० ४२६

किमिव हि दुष्करमकरुणानाम् । पृ० १०१
कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टम् । पृ० ३१५
गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य । पृ० ३१४
चित्रञ्च दैवम् । पृ० ५०७
जनयति हि प्रभुप्रसादलवोऽपि प्रागल्भ्यमधीरप्रकृतेः । पृ० ४०५
जनयन्ति हि पश्चाद् लक्ष्यमभूमिपातिता व्यर्थाः प्रसादामृतदृष्टयो महताम् । पृ० ६२८
दुःखितमपि जनं रमयन्ति सज्जनसमागमाः । पृ० ५२३
दुर्लभो हि दाक्षिण्यपरवशो निर्निमित्तमित्रमकृत्रिमहृदयो विदग्धजनः । पृ० ५५१
धर्म्मपरायणानां हि सदा समीपसञ्चारिण्यः कल्याणसम्पदो भवन्ति । पृ १९९
धीरा हि तरन्त्यापदम् । पृ० ५०९
धैर्यधना हि साधवः । पृ० ४३६
न च तादृशी भवति याचमानानाम्, यादृशी ददतां लज्जा । पृ० ५७९
न हि किञ्चिन्न क्रियते ह्रिया । पृ० ४५१
न हि क्षुद्रनिर्घातपाताभिहता चलति वसुधा । पृ० ४०८
न हि शक्यं दैवमन्यथा कर्त्तुमभियुक्तेनापि । पृ० १९१
नास्ति खल्वसाध्यं नाम मनोभुवः । पृ० ४६४
नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम् । पृ० १०६
परं हि दैवतमृषयः । पृ० १९२
पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि महामुनीनाम् । पृ० १२३
प्रणयिजनप्रत्याख्यानपराङ्मुखी च दाक्षिण्यपरवती महत्ता सताम् । पृ० ५७९
प्रभवति हि भगवान् विधिः । पृ० ५०९
प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदसवः । पृ० ४५०
प्रायेण च निसर्गत एवानायतस्वभावभङ्गुराणि सुखानि, आयतस्वभावानि-
च दुःखानि । पृ ५०९

प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि । पृ० ११४
बलवती च नियतिः । पृ० ५०९
बलवती हि द्वन्द्वानां प्रवृत्तिः । पृ० ४०८
बहुप्रकाराश्च संसारवृत्तयः । पृ० ५०७
बहुभाषिणो न श्रद्दधाति लोकः । पृ० ५६६
मूढो हि मदनेनायास्यते । पृ० ४५९
विपद्विपदं सम्पत् सम्पदमनुबध्नाति । पृ० २२३

सततमतिगर्हितेनाकृत्येनापि रक्षणीयान् मन्यन्ते सुहृदसून् साधवः। पृ० ४६१

सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्खलितम्। पृ० ४५७

सर्वथा न कश्चित् न खलीकरोति जीविततृष्णा। पृ० १०७

सर्वथा न न कञ्चन स्पृशन्ति शरीरधर्म्माणमुपतापाः। पृ० ४०८

सुखमुपदिश्यते परस्य। पृ० ४६१

स्वल्पाप्येकदेशावस्थाने कालकला परिचयमुत्पादयति। पृ० ४०५

हर्षचरित

अखिलमनोज्वलनप्रशमनकारणं हि भगवती प्रव्रज्या। पृ० ४०७
अतत्त्वदर्शिन्यो भवन्ति अविदग्धानां धियः। पृ० ३१०
अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी। पृ० २३५
अतिद्रुतवाहिनी च अनित्यता नदी। पृ० ४०६
अतिरोषणश्चक्षुष्मानप्यन्ध एव जनः। पृ० २०
अतिशीतलः पतिशोकानलाद् अक्षयस्नेहेन्धनाद् अस्मादनलः। पृ० २४८
अतिसुकुमारं जनं सन्तापपरमाणवोऽपि मालतीकुसुममिव म्लानिमान-
यन्ति। पृ० २६

अदूरव्यापिनः फल्गुचेतसाम् अलसा मनोरथाः। पृ० १६९
अनपायिन्यः चित्तवृत्तिग्राहिण्यो हि भवन्ति प्रज्ञावतां प्रकृतयः। पृ० ११६
अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम्। पृ० ६७
अनवरतनयनजलसिच्यमानस्तरुरिव विपल्लवोऽपि सहस्रधा प्ररोहति। पृ० २६
अनुकम्पाभूमयश्च प्रकृत्यैव युवतयः। पृ० ३९०
अनुक्तेऽपि साधूनां शरीरादौ स्वामिन एव प्रणयिनः। पृ० १५७
अपि च विद्वत्सम्मताः श्रूयमाणा अपि शब्दा इव सुखयन्ति साधवः। पृ० १५७
अप्रगल्भमपि जनं प्रभवता प्रश्रयेणार्पितं मनो मधुरिव वाचालयति। पृ० ३७
अबलानां हि प्रायशः पतिरपत्यं वा अवलम्बनम्। पृ० ४०१
... गुणा सर्वस्य पृ० १७३

अभिचारा इव विप्रकृताः सद्यः सकलकुलप्रलयमुपहरन्ति मनस्विनः । पृ० २८६
अभिजातैस्सह हसोऽपि मिश्रीकृता महतीं प्रीतिमारोपयन्ति । पृ० ३२
अभिनन्दति हि स्नेहकातरापि कुलीनता देशकालानुरूपम् । पृ० २४१
अयत्नेनैवालिनम्रे साधौ धनुषीव गुणः परां कोटिमारोहति विस्रम्भः । पृ० ३८
अर्थिने किमिव नातिसृजन्ति सन्तः । पृ० ४०८
अलङ्कारो हि परमार्थतः प्रभवतां प्रश्रय एव । पृ० ३८२
अलसः खलु लोकः, यदेवं सुलभसौहार्दानि येनकेनचिन्न क्षीणाति महतां-मनांसि । पृ० ४६
अलोहः खलु संयमनपाशः सौजन्यमभिजातानाम् । पृ० २८१
असंस्कृतमतयोऽपि जात्यैव द्विजन्मानो माननीयाः । पृ० १८
आत्मार्पणं हि महताम् अमूलमन्त्रमयं वशीकरणम् । पृ० ३५६
उपदिशन्ति हि विनयमनुरूपप्रतिपत्त्युपपादनेनापि वाचा विनापि कर्तव्यानां-स्वामिनः । पृ० ११९–१२०
उपनयन्ति हि सतां हृदयम् अदृष्टमपि जनं शीलसंवादाः । पृ० १४८
एकभृत्यता हि जनयति जने परमं पक्षपातम् । पृ० ३७५
औरसदर्शनं हि यौवनं शोकस्य । पृ० २६५
कष्टो मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्धः । पृ० ८२
कस्य न प्रतीक्ष्यो मुनिभावः । पृ० ३७३
कियद्दूरं वा चक्षुरीक्षते । पृ० १९
केवलं कृपाकृतविशेषः तनयस्नेहात् सुदूरेणातिरिच्यते दुहितृस्नेहः । पृ० २०८
को हि नाम चेतनः सहेत विरहमपत्यानाम् । पृ० २०८
क्षणिका महाभूतग्रामगोष्ठ्यः । पृ० ४०६
क्षमा हि मूल सर्वतपसाम् । पृ० २०
गृहगतैरनुगन्तव्या एव लोकवृत्तयः । पृ० २०८
जनयन्ति च विस्मयमतिधीरधियामप्यदृष्टपूर्वा दृश्यमाना जगति स्रष्टुः सृष्ट्यतिशयाः । पृ० ३८
तृप्तिमशिक्षिता च भगवतः सर्वभूतभुजो बुभुक्षा मृत्योः । पृ० ४०६
दारयति च दारुणः क्रकचपात इव हृदयं संस्तुतजनविरहः । पृ० २१
दुःखदग्धानां च भूतिरमङ्गला च, अप्रशस्ता च, निरुपयोगा च भवति । पृ० २४९
धनोष्मणा म्लायति लतेव मनस्विता । पृ० १५७
धीराणां चापुनरुक्ताः परोपकाराः । पृ० १६८
न खलु कोपकलुषिता विमृशति मति ——— वा । पृ० २०

न च स्वप्नदृष्टनष्टेष्विव क्षणिकेषु शरीरेषु बध्नन्ति बन्धुबुद्धिं प्रबुद्धाः । पृ० २८
न मत्तो नवनरस्त्रैलोक्याभिराज्योपभोगोऽपि मनस्विनः । पृ० ३५४
न सन्धेन ते येषां सनातनमध्यवसितानां न विघ्नन्ते मित्रोदासीनशत्रवः । पृ० ८१
न हि कुलशैलनिवहवाहिनो वायवः सम्हरन्ति तरले तूलराशौ । पृ० २७६-२७
निष्कारणा च निकारकणिकापि क्लेशयति मनस्विनो मानसमसहश-
जनादापतन्ती । पृ० २
निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिवैकत्र धर्मक्रोधयोर्वृत्तिः । पृ० १९
परगुणानुरागिणी प्रियजनकथाश्रवणरसमोहिता च मन्ये महतामपि-
मतिरपहरति विवेकम् । पृ० १३
परलोकसाधनं च धर्मं धर्मो मुनीनाम् । पृ० ३६०
पिशाचानामिव नीचात्मनां चरितानि छिद्रप्रहारीणि प्रायशो भवन्ति । पृ० २
पुरःप्रवृत्तप्रतापप्रहताः पन्थानः पौरुषस्य । पृ० २८८
प्रख्यातैव च मन्मथस्य दुर्निवारता । पृ० ५२
प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानो न ज्ञातिभिः । पृ० २३६
प्रज्वलितं हृदयम् आत्मदाहभीत इव स्वप्नेऽपि नोपसर्पति विवेकः । पृ० २६९
प्रणयप्रदानदुर्ललिता दुर्लभमपि मनोरथम् अतिप्रीतिरभिलषति । पृ० ४०७
प्रतनुगुणलवग्राह्याणि कुसुमानीव भवन्ति मनांसि सताम् । पृ० १५७
प्रतापसहाया हि सत्त्ववन्तः । पृ० २७२
प्रत्युपकारदुष्प्रवेशास्तु भवन्ति धीराणां हृदयावष्टम्भाः । पृ० १६९
प्रथमदर्शने चोपायनमिवोपनयति सज्जनः प्रणयम् । पृ० ३७
प्रथम राज्याङ्गं दुर्लभाः सद्भृत्याः । पृ० २०२
प्रपन्नपरदुःखक्षणदीर्घाश्च भवन्ति श्रमणाः । पृ० ३९०
प्राणपरिरक्षणाच्च परं नापरं पुण्यजातं जगति गीयते जनेन । पृ० ३९०
प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलैः शैशवमपराधी । पृ० ८१
प्रायेण सत्स्वपि अनेकेषु वरगुणेषु अभिजन एव रज्यन्ते धीमन्तः । पृ० २०
प्रेयसश्च जनस्य जनयति सुहृदपि दृष्टो दृशामाश्वासम् । पृ० ३७३
बालविद्याः खलु महतामुपकृतयः । पृ० ३३९
भक्तजनानुरोधविधेयानि हि भवन्ति दैवतानां मनांसि । पृ० १७९
भगवती च वैधेयेऽपि धर्मगृहिणी गरिमाणमारोपयति प्रव्रज्या । पृ० ३७३
भव्या न द्विरुच्चारयन्ति वाचम् । पृ० ४०९
भिदुरा जीवबन्धनपाशतन्तवः । पृ० ४०६
भुजे वीर्यं निवसति सतां न वाचि । पृ० १६६
महतां चोपरि निपतन्नणुरपि सृणिरिव करिणां क्लेशः कदर्थनायालम् । पृ०

महासत्त्वता हि प्रथममवलम्बनं लोकस्य । पृ० २५०
मैत्री च प्राय: कार्यव्यपेक्षिणी क्षोणीभृताम् । पृ० ३४३
यं च किल शोक: समभिभवति तं कापुरुषमाचक्षते शास्त्रविद: । पृ०२६६
युक्तायुक्तविचारशालीनमपि शिक्षयति स्वार्थतृष्णा प्रागल्भ्यम् । पृ० ४०७
यौवनारम्भे कन्यकानाम् इन्धनीभवन्ति पितर: सन्तापानलस्य । पृ० २०७
लोकयात्रामात्रनिबन्धना बान्धवता । पृ० २९५
लोहेभ्य: खलु कठिनतरा: स्नेहमया बन्धनपाशा: । पृ० २२२
वरं क्षणमपि कृता मानवता मानवता । पृ० ३१६
विशुद्धया हि धिया पश्यन्ति कृतबुद्धय: सर्वानर्थानसतस्सतो वा । पृ० १६
शक्याशक्यपरिसङ्ख्यानशून्या: प्रायेण स्वार्थतृष: । पृ० १३३
शस्त्रालोकप्रकाशिता: शून्या दश दिश: शौर्यस्य । पृ० २८८
संवर्धनमात्रोपयोगिन्यो धात्रीनिर्विशेषा: खलु भवन्ति मातर:-
कन्यकानाम् । पृ० २०८
सकलजनोपकारसज्जा च सज्जनता जैनी । पृ० ३६०
सज्जनमाधुर्याणाम् अभूतकदास्यो दश दिश: । पृ० ३४५
सतां तु विस्तारवत्य: स्वभावेनैवोपकृतय: । पृ० १६९
सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या । पृ० २८
सलिलानीव गतानुगतिकानि भवन्ति अविवेकिनां मनासि । पृ० ८१
सम्पत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति । पृ० १६९
सर्वथा लूतातन्तुच्छटाच्छिदुरास्तुच्छा: प्रीतय: प्राणिनाम् । पृ० २९५
सर्वम् अधस्तान्नयति दारुणो दासशब्द: । पृ० ३५४
सर्वसत्त्वानुकम्पिनी प्राय: प्रव्रज्या । पृ० ३१०
सर्वात्मना निरीश्वरं विश्वं नश्वरम् । पृ० ४०६
सहजलज्जाधनस्य प्रमदाजनस्य प्रथमाभिभाषणम् अशालीनता । पृ० ३७
सहजस्नेहपाशग्रन्थिबन्धनाश्च बान्धवभूता दुस्त्यजा जन्मभूमय: । पृ० २६
साधुजनश्च सिद्धिक्षेत्रम् आर्तवचसाम् । पृ० ३९०
सामान्योऽपि तावच्छोक: सोच्छ्वासं मरणम् । पृ० २३६
सुधीरेऽपि मनसि यशासि कुर्वन्ति विवरम् । पृ० १५७
सेवाभीरवो हि सन्त: । पृ० ३४५
स्त्रियो हि विषय: शुचाम् । पृ० २६६
स्थास्नुनि यशसि हि बान्धवधीर्धीराणाम् । पृ० २८९
प्रकृतयो भवन्ति भव्यानाम् पृ० १५९
स्वैरिणो विचित्रा: खलु लोकस्य स्वभावा पृ० ११५ ★

सहायक साहित्य

(संस्कृत-हिन्दी)

अभिज्ञानशकुन्तल—कालिदास, [illegible] द्वारा सम्पादित

अवन्तिसुन्दरीकथा—दण्डी

उदयसुन्दरीकथा—सोड्ढल, सी० डी० दलाल आदि द्वारा सम्पादित, १९२० ई०

ऋतुसंहार—कालिदास, खेलाडी लाल ऐण्ड सन्स

कादम्बरी—बाणभट्ट, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, १९५६ ई०

कादम्बरी—बाणभट्ट, पी० पीटर्सन द्वारा सम्पादित, १९००

कादम्बरीकथासार—अभिनन्द, संवत् १९५७

कुमारसंभव—कालिदास, निर्णय सागर मुद्रणालय, १९५५ ई०

केशवग्रंथावली—विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित, हिन्दुस्तान एकेडेमी उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, १९५५ ई०

गद्यचिन्तामणि—वादीभसिंह, टी० एस० कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित, १९०२ ई०

तिलकमञ्जरी—धनपाल, निर्णयसागर मुद्रणालय, १९३८ ई०

नलचम्पू—त्रिविक्रमभट्ट, निर्णयसागर प्रेस, १९०३ ई०

नैषध-परिशीलन—डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, हिन्दुस्तान एकेडेमी उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, १९६० ई०

नैषधमहाकाव्य—श्रीहर्ष, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

बाणभट्ट की 'आत्मकथा'—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दीग्रन्थ रत्नाकर लिमिटेड, १९६३ ई०

बाणाम्बरी—पोद्दार रामावतार अरुण, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, १९६१ ई०

यशस्तिलकचम्पू—सोमदेवसूरि, निर्णयसागर प्रेस

रघुवंश—कालिदास, पण्डित पुस्तकालय, १९५५ ई०

राजतरंगिणी—कल्हण, पण्डित पुस्तकालय, १९६० ई०

वाल्मीकीयरामायण—गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०२०

वासवदत्ता—सुबन्धु, चौखम्बा विद्याभवन, १९५४ ई०

वेमभूपालचरित—वामनभट्टबाण, वाणीविलासमुद्रायन्त्रालय, १९१० ई०

शिवराजविजय—अम्बिकादत्त व्यास, १९५७ ई०

श्रीगोविन्दनिबन्धावली—पं० गोविन्दनारायण मिश्र

श्रीहर्षचरितमहाकाव्य—बाणभट्ट, फ्यूरर् द्वारा सम्पादित, १९०९ ई०

संस्कृत साहित्य का इतिहास—ए० बी० कीथ, भाषान्तरकार—डा० मङ्गलदेव शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास, १९६० ई०

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास, साहित्य निकेतन, कानपुर, १९५१ ई०

हर्षचरित—बाणभट्ट, केरल विश्वविद्यालय का संस्करण, १९५८ ई०

हर्षचरित—(The Harshacarita of Bāṇa Bhaṭṭa) काणे द्वारा सम्पादित, मोतीलाल बनारसीदास, १९६५ ई०

हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, संवत् २०१९

पत्रिका

सारस्वतीसुषमा, १९ वर्ष, संवत् २०२१

अंग्रेजी

A Critical Study of Śrīharṣa's Naiṣadhīyacaritam, Dr. A. N. Jani

A History of English Literature—Emile Legouis & Louis Cazamian, London, 1945

A History of Sanskrit Literature—S. N. Dasgupta & S. K. De, University of Calcutta, 1947

An Advanced History of India—R. C. Majumdar and others, London, 1958

Bāṇa Bhaṭṭa : His Life & Literature, S. V. Dixit, 1963

Buddhist Records of the Western World—Samuel Beal, London, 1906

History of Classical Sanskrit Literature—M. Krishnamachariar, 1937

The Kadambari of Bana—C. M. Ridding, London, 1896

The Poetical works of Edmund Spenser, Oxford University Press, 1950

—:o:—